प्रयच्छामि महाभागामक्षयाय शुभाय ताम् ।

जो देवी सकल भूतोंमें लक्ष्मीरूप है तथा सकल देवताओंमें अवस्थित है, वह धेनुरूपमें मुझे शान्ति देवे । जो देवी लक्ष्मीरूपसे विष्णुहृदयमें, कुबेर तथा लोकपालोंमें विराजमान है वह धेनुरूपमें मुझे वरदान करे । जो देवी देहमें रुद्राणी तथा शंकरप्रिया है वह धेनुरूपमें मुझे शान्तिप्रदान करे । जो ब्रह्माकी लक्ष्मी, अग्निकी स्वाहा और चन्द्र, सूर्य ताराओंमें शक्ति है वही देवी धेनुरूपमें मेरी वरदात्री हो । सर्व देवमयी, सर्व वेदमयी, दुग्धदात्री देवीको समस्त लोकोंकी अक्षयकल्याणकामनासे दान करता हूं । इस स्तुतिके अक्षर अक्षरमें गोमाताकी अलौकिक महिमा दर्शायी गई है । और भी—अग्निपुराण २९२ अः—

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ॥
यत्र वेदध्वनिध्वान्तं यत्र गोभिरलंकृतम् ।
यत्र बालैः परिवृतं श्मशानमेव तत् गृहम् ॥

ब्राह्मण और गऊ एक ही कुलके ये दो हैं, एकमें वेदमन्त्र और दूसरेमें यज्ञीय हविका स्थान है। जो मकान वेदके शब्दसे गूंजता नहीं, गऊओंसे सुशोभित होता नहीं और बालगोपालोंसे भरा रहता नहीं, वह श्मशान है । अग्निपुराणके २९२ अध्यायमें गऊके विषयमें और भी बहुत कुछ लिखा गया है यथा—

शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीनाशनं परम् ।
गवां कण्डूयनं वारि शृङ्गस्याघौघमर्दनम् ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च रोचना ।
षडङ्गं परमं पाने दुःस्वप्नादिनिवारणम् ॥
गवां श्वासात् पवित्रा भूः स्पर्शनात् किल्विषक्षयः ।
गोमूत्रं गोमयं सर्पिः क्षीरं दधि कुशोदकम् ॥
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् ।
त्र्यहमुष्णं पिवेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं घृतं पिवेत् ॥
त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ।
तप्तकृच्छ्रव्रतं सर्वपापघ्नं ब्रह्मलोकदम् ॥

शीते तु शीतकृच्छ्रं स्याद् ब्रह्मोक्तं ब्रह्मलोकदम्।
गोमूत्रेणाचरेत् स्नानं वृत्तिं कुर्याच्च गोरसैः॥
गोभिर्व्रजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती।
मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी सगणो भवेत्॥
विद्यां च गोमतीं जप्त्वा गोलोकं परमं व्रजेत्।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं परम्॥
अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम्।
पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च वहन्ति च॥
हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान् दिवि।
ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमेषु योजिताः॥
सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्।
गावः पवित्रं परमं गावो मांगल्यमुत्तमम्॥
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः॥

गोमय, गोमूत्रसे अलक्ष्मी नाश और कण्डूयन तथा सींगके जलसे पापनाश होता है। गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और गोरोचन—यह षड़ङ्ग पान उत्तम तथा कुस्वप्न नाशक है। गायके श्वाससे भूमि पवित्र और स्पर्शसे पापक्षय होता है। एक रात उपवास करके गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घृत और कुशोदक पीनेसे चण्डाल भी पवित्र हो जाता है। तीन दिनों तक गर्म गोमूत्र, तीन दिन गर्म घी, तीन दिन गर्म दूध और तीन दिन वायुभक्षण कर तप्तकृच्छ्र व्रताचरण करनेसे पापनाश तथा ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। ये ही सब शीतल सेवन करनेसे शीतकृच्छ्र व्रत होता है, जिसका फल भगवान् ब्रह्माने ब्रह्मलोकवास बताया है। गोमूत्रसे स्नान, गोरससे जीवन धारण, गौओंके साथ गमन तथा उनके भोजनके बाद भोजन करनेसे गोव्रत होता है। एक मास गोव्रत करनेसे सकुटुम्ब गोलोकवास होता है। गोमती विद्याके जपसे भी गोलोक वास होता है। सकल जीवकी प्रतिष्ठा गऊमें ही है, परम मङ्गलका निदान गऊमें ही है, श्रेष्ठ अन्न गऊमें ही है। देवताओंका भी सुखाद्य गऊमें ही है। त्रिलोकपवित्रकर अन्नको गऊ ही बहाती है और स्वर्गमें भी देवताओंको तृप्त करती है। ऋषियोंके अग्नि-

होत्र तथा हवनमें गायही सेवा करती है, गाय ही सकल भूतोंकी शरण है। गाय परम पवित्र, परम मंगलमयी, स्वर्गकी सोपान और चिरन्तनी धन्य माता है। श्रीभगवान् मनुने गोदानका फल लिखा है यथा—

'अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य पिष्टपम्' (अ० ४, श्लो० २३१)

बैलका देनेवाला प्रचुर सम्पत्ति और गायका देने वाला सूर्यलोक प्राप्त करता है। पराशरसंहितामें लिखा है—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यन्तु पवित्रं पापनाशनम्॥
गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेताया गोमयं हरेत्।
पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया दधि चोच्यते॥
कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा॥ (अ. ११ श्लो. २७-२८)

गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घृत और कुशाका जल—यह पञ्चगव्य पवित्र तथा पापनाशक है। काली गायका गोमूत्र, श्वेत गायका गोमय, तामेके रङ्गकी गायका दूध, लाल गायकी दही, और कपिला गायका घृत लेना चाहिये। पाँच रङ्गकी गाय न मिले तो केवल कपिला गायसे ही सब लिया जा सकता है। विष्णुसंहितामें लिखा है—

गावो वितन्वते यज्ञं गावः सर्वाघसूदनाः।
शृङ्गोदकं गवां पुण्यं सर्वाघविनिसूदनम्॥
गवां कण्डूयनं चैव सर्वकल्मषनाशनम्।
गवां ग्रासप्रदानेन स्वर्गलोके महीयते॥
गवां हि तीर्थे वसतीह गङ्गा,
पुष्टिस्तथासां रजसि प्रवृत्ता।
लक्ष्मीः करीषे प्रणतौ च धर्म-
स्तासां प्रणामं सततं च कुर्यात्॥ (अ० २३ श्लो० ५८-६१)

यज्ञविस्तार तथा पापनाश गायके द्वारा होता है, गायका शृङ्गजल पुण्यप्रद और पापनाशक है। गायका कण्डूयन सकलपापनाशक है। गोग्रासदान करनेपर स्वर्गलोकमें पूजित होता है। गो-निवास-स्थानमें गङ्गा वसती हैं, उन-

की धूलिमें पुष्टि विद्यमान है, उनके शुष्क गोमयमें लक्ष्मी तथा प्रणाममें धर्म विराजमान है, अतः गोमाता सदा प्रणाम करने योग्य है। बृहद्धर्मपुराण, उत्तर खण्डमें लिखा है—

यावद्‌ गोब्राह्मणाः सन्ति तावत् पृथ्वी च सुस्थिरा ।
तस्मात् पृथ्वीरक्षणार्थं पूजयेद्‌ द्विजगोसतीः ॥
स्त्रियो गावो ब्राह्मणाश्च पृथिव्यां मंगलत्रयम् ।
एतेषां द्वेषकृद्‌ यस्तु स मङ्गलपरिच्युतः ॥

जब तक पृथिवीपर गौ और ब्राह्मण है, तभी तक पृथिवी सुरक्षित है, इस लिये पृथिवी रक्षाके अर्थ ब्राह्मण, गौ और सती स्त्रीकी पूजा करनी चाहिये। पृथिवीमें सती स्त्री, गौ और ब्राह्मण ये तीन मङ्गलरूप हैं, इनके प्रति जो द्वेष करता है उसका मङ्गल नष्ट होता है। देवीपुराणके १०७ अध्यायमें लिखा है—

"ज्ञानशक्तिः क्रिया धेनुर्देव्या रूपा प्रकीर्तिता ।"

ज्ञानशक्ति, क्रिया और गाय ये तीन देवी दुर्गाके रूप हैं। भविष्यपुराणमें लिखा है—

पृष्ठे ब्रह्मा गले विष्णुर्मुखे रुद्रः प्रतिष्ठितः ।
मध्ये देवगणाः सर्वे रोमकूपे महर्षयः ॥
नागाः पुच्छे खुराग्रेषु ये चाष्टौ कुलपर्वताः ।
मूत्रे गङ्गादयो नद्यो नेत्रयोः शशिभास्करौ ॥
एते यस्यास्तनौ देवाः सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥

गोमाताके पृष्ठ देशमें ब्रह्माका स्थान, गल देशमें विष्णुका स्थान और मुखमें रुद्रका स्थान है। बीचके अवयवोंमें समस्त देवता और रोमकूपमें महर्षिगण बसते हैं। पुच्छमें अनन्तनाग, खुराओंमें कुलपर्वत, मूत्रमें गङ्गादि नदियां और नेत्रोंमें चन्द्र, सूर्य हैं। ऐसी अनन्त देवमयी माता वरदा बने। देवीपुराणके ११० अध्यायमें लिखा है—

'गोस्पर्शनमायुर्वर्द्धनानाम्'

आयु बढ़ानेवाले कार्योंमेंसे गायका स्पर्श एक उत्तम कार्य है, जिससे आयु बढ़ती है। विष्णुपुराण पञ्चम अंश पञ्चम अध्यायमें लिखा है—

आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदाऽपि द्विजोत्तम ।
गोपुच्छं भ्राम्यन् हस्तेन बालदोषमपाकरोत् ॥
गोः करीषमुपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके ।
कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वंश्चैतदुदीरयन् ॥

पुतना वधके अनन्तर त्रस्त यशोदाने श्रीकृष्णको गोदमें लेकर उनकी चारों ओर गोपुच्छ घुमाया और बालदोष दूर किया। नन्दगोपने भी शुष्क गोमय उनके मस्तक पर रक्खा और रक्षा मन्त्रका पाठ किया। और भी लिखा है—

करीषभस्मदिग्धाङ्गौ भ्रममाणावितस्ततः ।
न निवारयितुं शेके यशोदा न च रोहिणी ॥

[विष्णुपु. ६ अं. ६. अ.]

श्रीकृष्ण और बलराम अपने शरीरमें गोमय तथा उसका भस्म लगा कर घूमते थे, यशोदा या रोहिणी मना नहीं कर सकतीं थीं। वृहद्धर्मपुराण १५ अध्यायमें लिखा है—

विप्राणां चरणौ तीर्थौ गवां पृष्ठं तथा मतम् ।
एते यत्र हि तिष्ठन्ति तच्च तीर्थमुदाहृतम् ॥

ब्राह्मणोंके चरणमें तीर्थ और गौओंके पीठमें तीर्थ है। वे जहां ठहरे वह भी तीर्थ माना जाता है। और भी—

गङ्गातटे गवां चैव दर्शने स्यान्महाफलम् ।

[वृह० मध्यखण्ड १८ अ०]

यात्राकाले सवत्सां च धेनुं दृष्ट्वा सुखं व्रजेत् ।

[वृह० उत्तर ख० ६ अ०]

पुरा स्वयम्भुर्भगवान् सृजन् लोकान् स्वशक्तितः ।
प्रीत्यर्थं सर्वभूतानां गावः सृष्टा द्विजोत्तम ॥

[वृह० पु०]

ब्राह्मणं च स्त्रियो गाश्च पुष्पेनापि न ताडयेत् ।

[वृह० उ० २ अ०]

गवां सेवा तु कर्त्तव्या गृहस्थैः पुण्यलिप्सुभिः ।
गवां सेवापरो यस्तु तस्य श्रीर्वर्द्धतेऽचिरात् ॥

ताडनं म्रियतां वाक्यं स्पर्शनं तालपत्रतः ।
पदाघातं भक्ष्यरोधं वर्जयेद्ग गोषु मानवः ॥

[वृह० उ० ६ अ०]

आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं रजसा गवाम् ।

[सौर० पु० १८ अ०]

धावन्तीं गां परक्षेत्रे न चाचक्षीत कस्यचित् ।

[सौर० पु० १८ अ०]

गवां ग्रासप्रदानेन मुच्यते सर्वपातकैः ।

[सौर० पु० १० अ०]

मया गवां पुरीषं वै श्रिया जुष्टमिति श्रुतम् ।

[महाभारत अनुशासन पर्व ८२—१]

गङ्गातटपर गायके दर्शनसे महाफल लाभ होता है। यात्राके समय सवत्सा गायको देखनेसे यात्रा अच्छी होती है। पुराकालमें लोकसृष्टिके बाद स्वयम्भु भगवान्ने सबकी तृप्तिके लिये गायकी सृष्टि की। ब्राह्मण, स्त्री और गायको पुष्प से भी ताड़ना नहीं चाहिये। पुण्य चाहने वाले गृहस्थको गोसेवा अवश्य करनी चाहिये। इससे शीघ्रही श्रीकी प्राप्ति होती है। ताड़न, 'मर जा' यह कहना, ताड़के पत्तेसे छूना, पांवसे मारना, भूखा रखना यह सब गौके लिये वर्जनीय है। भस्म लगानेपर आग्नेय स्नान और गोधूलि लगानेपर वायव्य स्नान होता है। दूसरेके खेतमें चरती हुई गायको मना नहीं करना चाहिये। गोग्रास देनेसे सकल पापसे छुटकारा होता है। गोमयमें समस्त लक्ष्मी विद्यमान हैं। महाभारतके अनुशासनपर्वमें अर्जुनके प्रति श्रीभगवान्की भी उक्ति है:—

गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावना जगदुत्तमाः ।
ऋते दधिघृताभ्यां च नेह यज्ञः प्रवर्त्तते ॥
पयसा हविषा दध्ना शकृताऽप्यथ चर्मणा ।
अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति वालैः शृङ्गैश्च भारत ॥
गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाऽच्युत ॥
कीर्त्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव ।

गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं परम् ॥
गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते ।
मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ॥
निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम् ।
विराजयते तं देशं पापं चास्यापकर्षति ॥

गौवें सर्वश्रेष्ठ, स्वयं पवित्र तथा पवित्र करनेवाली और संसारभरमें सबसे उत्तम हैं, क्योंकि गायके दही तथा घृतके बिना यज्ञकार्य नहीं होता है। हे अर्जुन! गौवें दूधसे, घृतसे, दहीसे, गोबर तथा चमड़ेसे, हड्डियों, बालों और सींगोंसे हमारा उपकार करती हैं। गोधनके तुल्य और कोई भी धन नहीं है। गौओंका महिमाकीर्त्तन, महिमाश्रवण, गोदान, गोदर्शन, सकल पापोंको दूर करता है। गौवें लक्ष्मीरूपिणी हैं, उनमें कोई भी पाप नहीं है, वे सकल जीवोंकी माता तथा सकलसुखदायिनी हैं। जिस भूमिपर स्थित हो गऊ भय छोड़कर श्वास लेती है, उसकी शोभा बढ़ती है और वहांसे पाप हट जाता है। महाभारतके अनुशासनपर्वमें एक कथा आती है कि समस्त देवताओंके अंशको लेकर भगवान् ब्रह्माने गौमाताकी सृष्टि की। गङ्गादेवीको शिवजटासे आनेमें और लक्ष्मी देवीको नारायण छोड़ आनेमें थोड़ी देर लगी। तबतक गौमाताका समस्त शरीर देवताओंसे भर गया था, खाली जगह कोई भी न मिली। इन दोनों देवियोंने भगवती गोमाताके शरीरमें स्थानलाभार्थ मातासे बहुत ही प्रार्थना की। माताने कहा और तो कोई स्थान खाली नहीं है, केवल मूत्र और पुरीष बाकी है, इच्छा हो तो उसमें स्थान ले सकती हैं। 'तथास्तु' कहकर अति प्रसन्नताके साथ गङ्गादेवीने गोमूत्रमें और लक्ष्मीदेवीने गोमयमें स्थान ले लिया। दूसरी कथा उसी पर्वमें यह है— एकबार महाराजा नहुष भृगुवंशीय महर्षि च्यवनका मूल्य निर्द्धारण करने लगे, और उन्हें उनके मूल्य-रूपमें धीरे धीरे हजार, लाख तथा करोड़ रुपये तक देने लगे। किन्तु जब महर्षिने कहा कि यह भी उनके योग्य मूल्य नहीं है तो महाराजा आधा राज्य और अन्तमें समूचा राज्य देनेको तैयार हो गये। उसपर भी महर्षिने कहा कि यह भी उनका उपयुक्त मूल्य नहीं हुआ। अन्तमें महाराजाने जब महर्षिका मूल्य एक गाय निर्धारित किया तब प्रसन्नताके साथ उन्होंने स्वीकार किया। इस प्रकारसे आर्यशास्त्रमें गोजातिको उच्च स्थान दिया गया है।

इसका कारण क्या है ? इसका एक ही कारण है कि जिस प्रकार 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां' वीस लक्ष वृक्षयोनिमें अश्वत्थ वृक्षयोनि ही अन्तिम और इस हेतु सर्व श्रेष्ठ है, उसी प्रकार 'चतुरशीतिलक्षान्ते गोजन्मा तत्परं नरः' ऐसा कहकर तत्त्वदर्शी महर्षियोंने पशुयोनिमें गोजन्मको ही अन्तिम जन्म वताया है। प्रकृतिके त्रिगुणमय तीन प्रवाहके अनुसार जरायुज पशुओंमें तमोगुणकी अन्तिम योनि वानरकी, रजोगुणकी अन्तिमयोनि सिंहकी और सत्त्वगुणकी अन्तिम योनि गायकी होती है, अतः गोजातिमें सत्त्वगुण और सात्त्विकशक्तिकी अधिकता होनेसे सत्त्वगुणप्रिय धर्मप्राण आर्यजातिने गोमाताकी देवीवत् पूजा की है, सर्वश्रेष्ठ स्थान उन्हें दिया है। अव विचार करनेकी वात यह है कि लौकिक जगत्में इस सात्त्विकता तथा शक्तिमत्तासे क्या क्या लाभ हमें प्राप्त होता है। नीचे क्रमशः इसीका तत्त्वनिरुपण किया जायगा। मनुसंहितामें लिखा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

अग्निमें दी हुई आहुति सूर्यदेवको प्राप्त होती है, उससे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति होती है। आहुति गव्य घृतकी हुआ करती है, भैंसी आदिके घृतसे हवन करना शास्त्रविरुद्ध है। अतः गौमाताकी रक्षाके विना यज्ञकार्य निष्फल होगा, जिससे अन्नका अभाव होकर देशमें दुर्भिक्ष फैल जायगा और प्रजाकी उत्पत्ति भी रुक जायगी यह निश्चय है। द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन्त्रशुद्धिके विना यज्ञकर्ममें सफलता नहीं होती है। वल्कि कहीं कहीं विपरीत फल भी हो जाता है। "मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा" इत्यादि महाभाष्य वचन प्रसिद्ध ही है। द्रव्यशुद्धिमें घृत आदि यज्ञीय द्रव्यका ग्रहण होता है। क्रियाशुद्धिमें वेदानुकूल क्रियाका ग्रहण होता है और मन्त्रशुद्धिमें वैदिक मन्त्रोंके शुद्धउच्चारणका ग्रहण होता है। अतः अन्न तथा प्रजाकी रक्षाके लिये गोजातिकी परम आवश्यकता होनेके कारण आर्य शास्त्रमें गोमहिमा विशेषरूपसे वताई गई है। जैसा कि पहिले कहा गया है—

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥

ब्राह्मण और गौ गुणविचारसे एक ही कुलके ये दोनों होते हैं क्योंकि वेद

मन्त्रके लिये ब्राह्मण और यज्ञीय हविके लिये गायकी उत्पत्ति होती है। अतः संसारकी रक्षा, प्रजाकी उन्नति, अन्नकी वृद्धि सभीके लिये गौ और ब्राह्मणकी विशेष आवश्यकता है।

संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं है जिसके सभी अङ्गसे कुछ न कुछ उपकार प्राप्त होता है। केवल गौ ही ऐसा जीव है, जिसके सभी अङ्ग किसी न किसी अच्छे काममें आते हैं। भैंसीमें दूध देनेकी शक्ति गायकी अपेक्षा अधिक अवश्य है, किन्तु भैंस तमोगुणी होनेसे मृत्युका वाहन और गौ सत्त्वगुणी होनेसे शङ्कर भगवान्‌का वाहन है। इस कारण भैंसीके दूधमें तमोगुणका प्रभाव है, इसके पीनेसे ब्रह्मचर्यकी रक्षा नहीं होती है। कामादि पशुभावकी वृद्धि होती है। मनबुद्धि सभी मोटी हो जाती है। शरीर जड़ताग्रस्त हो जाता है। किन्तु गव्यामृत अमृत ही कहलाता है। इसमें ब्रह्मचर्यरक्षा, मनः संयम, बुद्धिकी स्फूर्त्ति, शारीरिक नीरोगता, आत्माकी उन्नति आदि सभी कुछ सात्त्विकभाव प्रदानकी शक्ति विद्यमान है। दही, तक्र, मक्खनमें जो धातुपुष्टकारी अजीर्णनाशकारी मस्तिष्कके बल वृद्धिकारी अपूर्व गुणावली है, उसको तो आज कलके डाक्टरी सायन्सने भी प्रमाणित कर दिया है। गव्यघृत वेदमें "आयुर्वै घृतम्" अर्थात् प्राणियोंके प्राणरूप करके वर्णन किया गया है। "हैयङ्गवीन" अर्थात् ताजे बनाये हुये घृतकी भूरि भूरि प्रशंसा आयुर्वेदमें देखनेमें आती है। इस प्रकारसे गोदुग्ध तथा उससे उत्पन्न घृतादिकी महिमा शास्त्रमें बताई गई है।

सभी जीवोंके विष्ठा मूत्रको अपवित्र समझ कर लोग उससे घबड़ाते हैं और दूर रहते हैं। केवल गौके विष्ठा मूत्रमें ही ऐसी शक्ति है कि समस्त अपवित्रता उसके द्वारा दूर हो जाती है महाभारत अनु० ८२-१ में लिखा है—

"मया गवां पुरीषं वै श्रिया जुष्टमिति श्रुतम्"

अर्थात् गोमयमें समस्त लक्ष्मी विद्यमान है यही शास्त्रका सिद्धान्त है।

महापातक, उपपातक, अनुपातक सभी पापोंके प्रायश्चित्तके समय पञ्चगव्य पानका प्रथम विधान है जिसके बिना प्रायश्चित्त ही वृथा हो जाता है। इससे अधिक पवित्रकारिणी शक्ति और क्या बताई जा सकती है। अस्पृश्य स्पर्श आदि दोषोंसे शालिग्राम शिला आदिके अपवित्र हो जानेपर भी पञ्चगव्यके द्वारा ही उनकी शुद्धि की जाती है। अतः देवताओंकी भी पवित्रतादायिनी गाय ही है। बिना गोग्रास दिये कोई भी प्रायश्चित्त सफल नहीं होता है। बिना गोदान किये कोई भी सकाम कर्म सिद्ध नहीं होता है। "वायव्यं

गोरजःस्नानम्" गौमाताकी चरण धूलिमें भी स्नानकी पवित्रता देनेकी शक्ति है। मृत्युके बाद भी गायकी ही पूंछ पकड़कर वैतरणी पार हो परलोकगत जीव सुखमय लोकमें पहुंच सकता है। अतः इहलोक परलोक सर्वत्र ही गौमाता मनुष्योंके उन्नतिपथकी साथी है।

आयुर्वेद शास्त्रमें गोमूत्र और गोमयकी शतमुखसे प्रशंसा लिखी गई है। गोमयमें बिजलीके रोक देनेकी अद्भुत शक्ति है, इस कारण पर्वतीय लोग वर्षात्‌से पहिले अपने मकानको गोबरसे लीपकर दरवाजे पर गोमयके यन्त्र बनाये रखते हैं। ऐसा वङ्गादि देशके लोग भी करते हैं। पश्चिमी सायन्स वालोंने यह बात निश्चय करके जान ली है कि बिमारियोंके कीट उत्पन्न न होने देनेकी शक्ति (antiseptic) जितनी गोबरमें है इतनी और किसी वस्तुमें नहीं है। इसलिये घरको गोबरसे लीपना और सब उपायोंसे अच्छा समझा गया है। पेटके समस्त रोग, सकल प्रकारके धातुरोग, नेत्र रोग तथा हृदयरोग आराम करनेकी अद्भुत शक्ति गोमूत्रमें विद्यमान है। नियमित गोमूत्र पानसे दमेकी बिमारी बिल्कुल अच्छी हो जाती है, और नेत्रमें ज्योति बहुत ही बढ़ जाया करती है। नन्दिनीके मूत्रको आंखमें लगाकर रघुराज दिव्यनेत्र हो गये थे और इन्द्रके रथको तथा इन्द्र और अश्वको देख लिया था यह बात शास्त्रमें प्रसिद्ध ही है। धातुदौर्बल्य, शुक्रतारल्य, प्रमेह मधुमेह आदि समस्त रोग गोमूत्र पानसे अच्छे होते हैं। अजीर्ण, तिल्ली तथा यकृत्‌की खराबी, उदरामय, आंव आदि सभी उदरके रोग गोमूत्र पानसे दूर हो जाते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे आयुर्वेदमें गोमूत्र द्वारा शोधन करके कितनी ही औषधियोंके बनानेकी विधि बताई गई है। महाभारतके अनुशासनपर्वकी कथा पहिले ही कही गई है कि, अति प्रसन्नताके साथ गङ्गादेवीने गोमूत्रमें और लक्ष्मीदेवीने गोमयमें स्थान लिया है। इस कथाके द्वारा गोमहिमाकी पराकाष्ठा तथा गोमूत्र और गोमयकी परमोपकारिता बताई गई है। वास्तवमें गोमूत्रमें वे सब गुण हैं जो कि, गङ्गाजलमें पाये जाते हैं। गङ्गाजलकी कीटनाशिनी शक्ति, गङ्गाजलकी उदररोगादि नाशशक्ति, गङ्गाजलकी पवित्रतादायिनी शक्ति, गङ्गाजलकी मलिनतानाशशक्ति, गङ्गाजलकी दिव्य तेजदायिनीशक्ति ये सभी शक्ति गोमूत्रमें पूर्णरूपसे विराजमान हैं। प्रसूता स्नात स्त्रीको जो गोमूत्र पान करनेकी आज्ञा धर्मशास्त्रमें दी गयी है, इसमें यही कारण है कि, प्रसूता स्त्रीके उदरमें जमे हुए समस्त मलको गोमूत्र साफकर निकाल देता है और गर्भाशयको बिलकुल शुद्ध बना देता है। अन्यथा प्रसूताको विषम-

ज्वर अम्लपित्त कुक्षिगलन आदि कठिन कठिन रोग उत्पन्न हो सकते हैं। गोमयको 'श्रिया जुष्टम्' कहकर लक्ष्मीका स्थान तो पहिले ही कह दिया गया है और उसमें लक्ष्मी बुलानेकी अद्भुतशक्ति तथा नैरोग्यप्रदायिनी समस्त शक्ति पहिले ही प्रतिपादित की गई है। अतः महाभारतकी यह आख्यायिका अक्षरशः सत्य प्रमाणित होती है।

गोमातामें खास दो शक्तियां होती हैं, एक चेचक रोगनाश और दूसरा अपुत्रको पुत्र देनेकी शक्ति। भारतके किसी प्रान्तमें भीषण महामारीरूपसे चेचक फैल जानेके समय एक अङ्गरेजने अपनी आंखों जांच करके देखा था कि जिन जिन ग्रामोंमें अहिरलोग बसते थे और गौके थनोंमें हाथ लगाकर अपने हाथ दूध दुहा करते थे, उन ग्रामोंमें चेचक नहीं फैला। इसी अपूर्व तत्वके ज्ञान लेनेके बाद ही गोबीजसे (Vaccination) टीका देकर चेचक रोगसे बचनेकी प्रथा चली। यह गोमातामें अपूर्वशक्ति है। उनमें दूसरी अपूर्वशक्ति सन्तान प्रदान करनेकी है। तन, मन, धनसे गोसेवा करनेपर वन्ध्या भी पुत्रवती होती है, अपुत्रक भी पुत्ररत्न लाभ किया करता है। गोमाता स्वभावतः ही सबकी जननी है और जननीसे भी बढ़कर है। क्योंकि अपनी माताके बीमार होनेपर या अन्तःसत्ता अथवा प्रसव होनेपर पहिली सन्तानके लिये उनका दूध पीने-योग्य नहीं रहता है। उस समय गोमाता ही सच्ची माता बनकर दूधपोष्य शिशुका पालन करती है। उत्तमोत्तम अन्न भोजन करनेवाली मातासे जो पालन कार्य नहीं होता है, तृणभोजी गोमाता वह भी काम सानन्द सम्पादन करती है। अपने बच्चेको बुभुक्षु रखकर भी मनुष्य सन्तानोंको बिना संकोच दूध देकर प्रतिपालन करती है और यही पालन बचपनसे लेकर मृत्यु पर्यन्त बल्कि मृत्युके बाद भी पिण्डदानके समय तक करती रहती है। इन्हीं उदार हेतुओंसे सन्तानोत्पत्तिके साथ गौमाताका स्वाभाविक सम्बन्ध है, और इन्हीं कारणोंसे गोसेवाद्वारा सुपुत्र लाभ हुआ करता है। महाराजा दिलीपको इसीलिये वशिष्ठ महर्षिने नन्दिनीकी सेवा द्वारा ही पुत्ररत्नलाभकी आज्ञा की थी, और इसी नन्दिनीकी कृपासे ही महर्षि वशिष्ठने ससैन्य विश्वामित्रका प्रचुर आतिथ्य किया था और उनके साथ संग्राममें भी विजय लाभ किया था। महाभारतमें लिखा है कि,—

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।
विराजयते तं देशं पापं चास्यापकर्षति ॥

जिस भूमिपर बैठकर गऊ भय छोड़कर श्वास लेती है, उसकी शोभा बढ़ती है और वहांसे पाप हट जाता है। दैवी सम्पत्तिकी खान होनेसे गौओंमें पापनाशकी विशेष शक्ति विद्यमान है। गौके सभी शरीरमें दैवी शक्तिके केन्द्र विद्यमान हैं, जैसा कि भविष्यपुराणमें 'पृष्ठे ब्रह्मा' आदि श्लोकोंद्वारा कहा गया है।गौमाताके पृष्ठदेशमें ब्रह्माका केन्द्र, गलदेशमें विष्णुशक्तिका केन्द्र, मुखमें रुद्रशक्तिका केन्द्र, बीचके देहमें समस्त देवताओंके केन्द्र, रोम रोममें महर्षियोंके केन्द्र होते हैं। उनके नेत्रोंमें चन्द्र-सूर्यशक्ति, मूत्रमें भागीरथीकी शक्ति और पुच्छमें नागराजकी शक्ति होती है। इतनी दैवीशक्ति तथा ज्ञानशक्तिके केन्द्र होनेसे अनेक फल गोसेवा द्वारा प्राप्त होंगे, इसमें सन्देह नहीं। यदि तैंतीस करोड़ देवताकी पूजाके बदले कोई गोमाताकी पूजा करेगा तो इष्टसिद्धि अवश्य होगी। क्योंकि गोमाताके शरीरमें ही सब देवता हैं, उन्हें दैवीशक्ति प्रचुर प्राप्त होगी जिससे आसुरीशक्तिका अत्याचार उनपर नहीं हो सकेगा। उनका शरीर, मन, जितेन्द्रियता सब कुछ बना रहेगा, यह निश्चय है। ऋषिशक्तिका केन्द्र होनेसे गोसेवा द्वारा बुद्धिकी उन्नति और ज्ञानका लाभ अवश्यम्भावी है। गङ्गास्नानमें जितना फल है, लक्ष्मी पूजनमें जितना फल है, विष्णु पूजा शिवपूजामें जितना फल है सभी केवल गोसेवा, गो पूजा द्वारा प्राप्त हो सकेगा। स्थूल विद्युत्शक्ति दैवीशक्तिका ही स्थूल विकाशरूप है। इसलिये विद्युत्शक्ति गोमाताके शरीरमें बहुत कुछ भरी रहती है। गौओंके शरीर, शृङ्ग, खुराके स्पर्शसे, गोपूजा तथा गोचारणसे यह शक्ति प्राप्त होती है। "गावः कण्डूयनप्रियाः" इसलिये गौयें कण्डूयन पसन्द करती हैं। उनके शरीरमें कोई हाथ फेरे या खुजलावें तो उन्हें अच्छा लगता है। मनुष्योंके प्रति उनकी स्वाभाविक दया ही इसमें कारण है। यही कारण है कि गोव्रतमें शृङ्ग खुरा आदिका स्पर्श करके गोपूजनकी विधि बतायी गई है। और यही कारण है कि,।श्रीभगवान् नन्दनन्दनने स्वयं गोचारण करके जगत्को गोमाताके प्रति कर्त्तव्य बता दिया था। प्राचीनकालमें गोरक्षाके ऊपर ही नन्द, सुनन्द, महानन्द आदि उपाधि मिला करती थी। अतः सिद्धान्त यह निकला कि, घरमें जितनी गौवें रक्खी जायंगी घरकी स्थूल तथा दैवीशक्ति उतनी ही बलवती होगी, सन्तानोंका स्वास्थ्य वीर्य उतना ही पुष्ट होगा, घरकी शान्ति, सम्पत्ति उतनी ही वृद्धिगत होगी इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है। गौवें विद्युत्शक्तिकी पुञ्जरूपिनी (Galvani centre) हैं, सूक्ष्म दैवीशक्तिकी, व्यापक दैवीशक्तिकी साकार मूर्त्तिरूपिनी (epitome) हैं, इसी एक ही पिण्डमें

ब्रह्माण्डकी सारी शक्ति सन्निविष्ट है। अतः गोसेवा न करनेवाले तथा गौओंको दुःख देनेवाले जैसे नराधम पापी और कौन होगा।

आर्यशास्त्रमें पञ्चपिताकी तरह पांच माता भी बताई गई हैं। यथा—

जननीजन्मभूमी च जाह्नवी वेदमातरः।
सुरभी तत्र विज्ञेया पञ्चैते मातरः स्मृताः॥

गर्भधारिणी माता, जन्मभूमि, गङ्गा, गायत्री और गाय ये पांच माता होती हैं। विचार करने पर प्रमाणित होगा कि इन पाचोंमें गौमाता ही सबसे अधिक उपकार करने वाली हैं। अपनी माता एक या दो वर्ष दूधसे बच्चेको पालती है, किन्तु गौमाता मरण पर्यन्त और उसके बाद भी हमारी सेवा करती है। जन्मभूमि अन्न उत्पन्न करके उसके द्वारा हमें पालती है, किन्तु गौके विना न अन्नोत्पादक यज्ञ ही हो सकता है और न कृषिकार्य ही हो सकता है। अतः यह माता गौमाताकी मुखापेक्षिणी हुई। गङ्गा माताके विषयमें यह बात प्रसिद्ध है कि भगीरथ जब गङ्गाको लेने गये तो गङ्गाने पूछा कि अबतक कौन पाप नाश करता था। भगीरथने उत्तर दिया कि गौमाता ही पाप नाश करती थी। इसपर गङ्गाजीने गौसे पुछवाया कि उनका पृथिवीमें आना गौमाताको अप्रीतिकर तो नहीं होगा। गौमाताने शर्त लगाया "इस प्रतिज्ञा पर गङ्गा आसकती है कि जब तक गौ जगतमें रहे तभी तक गङ्गा भी रहे जब गौ न रहे तो गङ्गा भी न रहे।" इस आख्यायिकासे गौमाताकी प्रधानता सिद्ध होती है। गायत्रीका जप भी 'गोमुखी' में करनेसे दश गुण अधिक फल मिलता है ऐसा शास्त्रीय सिद्धान्त है। अतः पांच माताओंमें गौमाता ही सर्वश्रेष्ठा सिद्ध हुई। इन्हीं कारणोंसे आर्यशास्त्रमें गोमाताको इतना ऊंचा स्थान दिया गया है।

अब नवीन सायन्सके विचारानुसार गोमाताकी उपकारिताका कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है। मनुष्य शरीरको नीरोग, पुष्ट, बलवान् तथा दीर्घ काल स्थायी रखनेके लिये जितने रासायनिक उपादानकी आवश्यकता होती है, गायके दूधमें वे सभी विद्यमान हैं। भिन्न भिन्न परिमाणसे जल, मक्खन, केसिन, अलबुमिन, चीनी और लवण दोदुग्धमें रहते हैं। भैंसी, बकरी, भेड़ी आदिके दूधमें भी ये सब चीज़ें रहती हैं, किन्तु जिस परिमाणसे इन वस्तुओंके रहनेपर दूध शरीर, मन, आत्माके लिये उपकारी हो सकता है, वह परिमाण श्रीभगवान्ने गोदुग्धमें विशेष विचारसे रक्खा है। यही कारण है कि अन्यान्य

दूधोंकी अपेक्षा गोदुग्धमें सकल प्रकारकी शक्ति अधिक है। कृष्णा गायका दूध वायुनाशक, पीली गायका दूध वातपित्तनाशक, श्वेत गायका दूध गुरुपाक तथा श्लेष्मावद्धर्क और लाल गायका दूध वातनाशक है। बहुमूत्र, प्रमेह, मृगी आदि कितनी ही बीमारियोंमें गोदुग्ध रसायनकी तरह उपकारी है।

लेक्टिक् एसिड् वैक्ट्रिया नामक वीजाणुके द्वारा दूध दही हो जाता है, यह वीजाणु वायुमें घूमता रहता है, इसे पकड़कर दूधमें छोड़ देनेसे या ऐसे ही दहीको दहीमें मिला देनेसे दूध दही बन जाता है। यह वीजाणु शरीरके अन्तर्गत वाद्धर्क्यलानेवाले वीजाणुको नष्ट कर देता है और शरीरको नीरोग तथा पुष्ट बना देता है। इस कारण दहीकी और खासकर गव्य दहीकी विशेष प्रशंसा शास्त्रमें पाई जाती है। 'हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते' हेमन्त, शीत और वर्षात्में दधि उपकारी होता है, शरत्, ग्रीष्म और वसन्तमें नहीं। वैद्य-शास्त्रके मतानुसार दही बलकारक, रुचिप्रद, पवित्र, अग्निवद्धर्क, स्निग्ध, पुष्टिकारक तथा वायुनाशक है। दहीका पानी क्लान्तिनाशक, बलकारक, कफ-नाशक, वातनाशक है। चीनी मिश्रित दही तृष्णा तथा दाहनाशक है। गुड़ मिला दही वातनाशक, वीर्यवद्धर्क, पुष्टिकर, तृप्तिजनक और गुरुपाक है। रातको दही नहीं खाना चाहिये "न रात्रौ दधि भुञ्जीत" किन्तु प्रयोजन होनेपर चीनी व पानी मिलाकर खाया जा सकता है।

मलाईके साथ या विना मलाईके पानी मिले हुए दहीको मठा कहते हैं। और मलाई उतारे दहीको जल डालकर मथ डालनेसे उसे मथित कहते हैं। चतुर्थांश जलके साथ दहीको मथनेपर उसे तक्र और अद्धर्धांश जलके साथ मथनेपर उसे उदश्वित कहते हैं। बहुत जल डालकर मथे हुए दहीको छाछ कहते हैं। वैद्यशास्त्रानुसार मठा और मथित वायु और पित्तनाशक है। चीनी मिला हुआ दही महोपकारी रसायन है। तक्र धारक, कषाय, लघु, उष्णवीर्य, अग्नि उद्दीपक, शुक्रवद्धर्क, कफ और वायुनाशक है। ग्रहणी रोगीके लिये बहुत हितकर है। उदश्वित कफवद्धर्क, बलकारक और श्रान्तिनाशक है। छाछ शीतवीर्य, लघु, कफकारक, वायु-पित्त-श्रमनाशक है। नमक मिलानेसे अग्निवद्धर्क होता है। मठासेवकको रोग नहीं स्पर्श करता है। घी निकाला हुआ बड़ा ही लघु तथा हितकर है। वायुशान्तिके लिये सोंठ और सेंधा नमक मिला तक्र अच्छा है। पित्तनाशके लिये चीनी मिला हुआ मठा पीना चाहिये। हींग, जीरा और नमक मिला हुआ मठा वायुनाशक, रुचिकर, बलप्रद, अर्श

अतिसार नाशक है। शीतकालमें, मन्दाग्निमें, वायुरोगमें और अरुचिमें मठा अमृत जैसा काम करता है। विषमज्वर, ग्रहणी, अर्श, मूत्राघात, भगन्दर, प्रमेह, अतिसार, गुल्म, शूल, कृमि इत्यादि रोगोंमें मठा बहुत ही उपकारी है।

दूधको उबालनेसे उसके ऊपर जो चिकना, गाढ़ा पदार्थ जम जाता है उसे मलाई कहते हैं। कच्चे दूधको शीतल स्थानमें रख देनेपर भी उसपर मलाई जम जाती है। किन्तु कच्चे दूधकी अपेक्षा उबाले दूधमें अधिक मलाई जमती है। दहीके ऊपर भी मलाई जमती है, जिसे दहीकी मलाई कहते हैं। वैद्यमतानुसार मलाई मधुररस, गुरुपाक, वीर्यवर्द्धक, वायु तथा अग्निनाशक है। उबाले हुए दूधमेंसे मलाई निकालकर बचे दूधको गाढ़ा करके उसमें मलाई मिलानेसे रबड़ी कहाता है। यह बहुत ही सुस्वादु तथा पुष्टिकर वस्तु है। मलाईसे लड्डू, पूरी आदि कितनी ही उपादेय वस्तुएं बनाई जाती हैं।

दूधको उबालकर खूब हिला डुलाकर पहिले उसे ठण्डा करना होता है। तदनन्तर उसे मथनेपर मक्खन तैयार होता है। दहीके मथनेपर भी और दूध या दहीकी मलाईके मथनेपर भी मक्खन बनता है। कच्चे दूधकी अपेक्षा गर्म किये दूधमें अधिक मक्खन निकलता है। आजकल यूरोपमें मक्खन निकालनेके अनेक यन्त्र बन गये हैं, जिनके द्वारा अनायास मक्खन निकाले जा सकते हैं। वैद्यशास्त्रके मतसे मक्खन पुष्टिकारक, बलकारक, अग्निवर्द्धक और बालक, वृद्ध सभीके लिये हितकारक है। मिश्री मिला मक्खन अति उत्तम, बलकारक रसायन है। इसके सेवनसे दुर्बल तथा कृश मनुष्य भी कुछ दिनोंमें बलवान् और स्थूलकाय बन सकता है। मक्खनको सिरपर मलनेसे मस्तिष्क बलवान् और शरीरपर मलनेसे सुन्दरता व सुकान्ति उत्पन्न हो जाती है।

मक्खनको तपाकर घी बनाया जाता है। पश्चिम देशमें घीका प्रचलन नहीं है। किन्तु अति प्राचीनकालसे इस देशमें अति पवित्र वस्तु घी मानी जाती है और समस्त दैवकार्यमें इसका प्रयोग होता है। घी आयु, वीर्य तथा कान्तिका बढ़ानेवाला, जीवोंका प्राणस्वरूप है। इसके संयोगसे कितने ही देवभोग्य, उपादेय, पुष्टिकर पदार्थ तैयार किये जाते हैं। वैद्यशास्त्रमें घीकी सहायतासे अमृत, च्यवनप्राश, अशोक घृत, पुष्टिघृत आदि अनेक औषधियां प्रस्तुत की जाती हैं, जिनसे प्राचीन दुरारोग्य रोग दूर किये जाते हैं। पुराने

घीका मालिश करनेपर खांसी, निमोनिया आदि कठिन रोगोंमें भी बड़ा उपकार होता है।

अच्छे दूध, क्रीम या मक्खन निकाले दूधसे एक चीज बनती है, जिसको छाना कहते हैं। गर्म दूधमें छानाका पानी; दहीका पानी या मट्ठा छिड़का देनेसे छाना बन जाता है। अति उत्तम सेरभर दूधसे एक पाव विशुद्ध छाना तैयार होता है। छानाके द्वारा बङ्गाल तथा अन्यान्य प्रान्तोंमें अनेक प्रकारकी मिठाई बनाई जाती है, जो सुस्वादु और पुष्टिकर होती है। कई एक प्रकारकी तरकारी भी काश्मीर आदि देशोंमें छानाके द्वारा बनाई जाती है। चीनी मिला हुआ छाना धारक, पोषक तथा आमनाशक होता है। छाना निकाल लेनेपर जो पानी बचता है, उसे लघुपथ्यके रूपमें बच्चोंको दिया जाता है और फेफड़ेकी कमजोरी तथा पेटके अनेक रोगोंमें वह पथ्य है। इस पानीके मथनेपर भी मक्खन निकलता है।

एकमात्र दूधसे ही जब शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्माके पोषणकारी इतने पदार्थ बन सकते हैं, तो गव्यामृतको अमृत क्यों नहीं कहा जायगा और गोमाताकी देवीवत् पूजा क्यों नहीं होगी? अब गोशरीरके अन्तर्गत अन्यान्य वस्तुओंकी उपकारिता आधुनिक विज्ञानसिद्ध मतानुसार नीचे बतायी जाती है।

गौके गोबरके विषयमें पहिले ही कुछ लिखा जा चुका है। गोबरमें फासफोरिक एसिड्, चूना, मैग्नेशिया और सेलिका रहते हैं। इसमें नाईट्रोजन भी है। सांड़के गोबरमें यह सब अधिक परिमाणसे रहता है। यथा बछड़ेके गोबरमें ३० भाग, गायके गोबरमें ७५ भाग और सांड़के गोबरमें ८५ भाग नाईट्रोजन है। गोबरका गुण खाये जानेवाले पदार्थ तथा गौकी अवस्था पर निर्भर करता है। गोबरमें फिनाईलकी तरह दुर्गन्धनाशक शक्ति तथा उर्वरता बढ़ानेकी खास शक्ति है। उत्तम गोबरके खादसे खेतोंमें आलू, सलगम, गोभी, कपास, ईख आदि सब कुछ विशेषरूपसे उत्पन्न किये जा सकते हैं। किन्तु गोबरके बाहर फेंक रखनेसे उत्तम खाद नहीं बन सकता है। उसे गढ़ा बना कर उसमें जमा करना चाहिये और उपरसे मिट्टी ढाक कर खाद बनाना चाहिये।

आयुर्वेदमें गोबरको शीतनाशक कहा गया है, इसलिये साधु लोग उसके भस्मको बदनमें मलकर बिना वस्त्र शीत निवारण करते हैं। गोबरके द्वारा कागज जोड़नेका उत्तम मसाला बनाया जाता है, गोबर और कागजको मिलाकर

कई प्रकारके खिलौने तथा मूर्त्तियां बनाई जाती हैं। गोवरके भस्मसे उत्तम दन्तमञ्जन बनता है, उसमें तिल्ली नाशक शक्ति होनेसे आयुर्वेदमें उसका व्यवहार भी लिखा है। गोवरका धूंआं चोटपर लगानेसे आराम आजाता है। सूखे गोवरको उपल कहते हैं। उसकी आगसे भात बनानेपर वह बहुत ही लघुपाक तथा उदरामयमें उपकारक हो जाता है। उसका सेक देनेपर वात व्याधिके रोगोंमें आरोग्य लाभ होता है। उसकी आगसे वैद्य लोग स्वर्ण, रौप्य आदिका भस्म भी बनाते हैं। कटे घावपर ताजे गोवरका लेप देनेपर खून निकलना बन्द हो जाता है और घाव जुड़ जाता है। इत्यादि इत्यादि गोवरके अनेक गुण हैं।

गोमयकी तरह गोमूत्र भी परमोपकारी रसायन है। सायन्सके विचारसे उसमें फस्फेट, पोटास, लवण और नाईट्रोजन है। नाईट्रोजनमें यूरिया और यूरिकएसिड है। आयुर्वेदमतसे गोमूत्र खारा, कड़ुआ, कषैला, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दीप्तिकारक, मेधाजनक और पित्तकर है। यह कफ, वायु, शूल, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, श्वास, कास रोग, सूजन, कब्ज, पाण्डुरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, खुजली, आमवात, बस्तिरोग, कुष्ठरोग इत्यादिका नाशक है। इसकी बून्दे कानमें डालनेसे कानका दर्द दूर होता है।

गोमूत्रका खाद गोवरसे भी उत्तम होता है। गोशालामें जहां गायें रातको सोती हैं वहां बालू डालकर या किसी खड्डेमें गोमूत्र संग्रह करके उसमें गोवर डालकर खाद बनाया जा सकता है। गोमूत्रसे नित्य नेत्र धोनेपर नेत्रकी ज्योति बुढ़ापे तक अच्छी रहती है। इसके पानसे सब प्रकार कुष्ठरोग तथा तिल्ली रोग दूर हो जाते हैं। इससे कपड़ा साफ भी खूब होता है। गोमूत्रमें हड़ भिगोकर किसी लोहेके वर्त्तनमें पीस शरीरपर मालिश करनेसे धवल रोग आराम हो जाता है। ऐसाही भिगोकर अमृत हरीतकी बनती है जो उदरामय, अरुचि, अजीर्ण आदि रोगोंमें विशेष उपकारी है। गोमूत्रमें धानोंको भिगोकर, उन्हें भूंसीकी आगमें भून जो चावल निकलते हैं; उसका भात खानेसे कठिन कुष्ठ भी आराम हो जाता है। निर्गुण्डीके पत्तोंके फक्का बनाकर उसके साथ गोमूत्रका व्यवहार करनेपर भी कुष्ठरोग आराम हो जाता है। केवल गोमूत्र पानसे ही कितने कुष्ठरोगी इस कठिन व्याधिके प्रकोपसे निस्तार पाचुके हैं।

उत्तम गायके फेफड़ेके पास पीतवर्ण जो शुष्क पित्त होता है, उसे गोरोचन कहते हैं। आयुर्वेदके मतानुसार गोरोचन स्वयं महौषधि है तथा अनेक

महौषधिके वनानेमें और तान्त्रिक यन्त्रादि वनानेमें विशेष उपचार है। यह शीतल, तिक्त, कान्तिवर्द्धक, मङ्गल तथा वशीकरण जनक है। ग्रहदोष, उन्माद, गर्भपात, भूतबाधा, कृमि, कुष्ट आदिमें महौषधिरूपसे गोरोचनका प्रयोग होता है।

गायके सींगके गोल चिन्ह द्वारा उसकी उमरका निर्णय किया जाता है। इसका चूरा खादके भी काममें आता है। अङ्गूरके वेलमें यह खाद दिया जाता है। इसमें नाईट्रोजन और एमोनियाका अंश वहुत कुछ होता है। अच्छे सींगके द्वारा घड़ी और छड़ियोंकी मूठें तथा वटन वनाये जाते हैं। इसके खराव अंशको गलाकर सरेश वनाया जाता है।

गोरक्त परिवर्त्तित होकर तरल नाईट्रोजन वन जाता है। उसमें नाई-ट्रोजन, नमक और पोटास होता है। पश्चिम देशमें खादके वदले कहीं कहीं इसीका व्यवहार किया जाता है। इससे शराव और चीनी साफ की जाती है और प्रसियन्व्लू नामक स्याही भी वनाई जाती है।

गायकी हड्डियोंका चूर्ण भी अति उत्तम खाद है। उसमें चूना, नमक, केलसिकम, फासूफेट, कार्वोनेट और क्लोराईड् नामक पदार्थ होते हैं। हड्डियोंसे चर्वी निकाल दूसरे ही काममें उसका उपयोग किया जाता है। इसकी किसी प्रक्रियासे चीनी साफका भी काम लिया जाता है। चर्वीसे मोमवत्ती, ग्लिसेरिन, सावुन आदि वनते हैं।

गोचर्मसे जूता, जीन, वाजे, वैग, सन्दूक आदि वनाये जाते हैं। इस-लिये भारतसे प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयेका चमड़ा विलायतमें जाता है और वहांसे कई चीजें वनकर महंगी विकती हैं। चमड़ेको खेतमें गाड़ देनेसे खादका काम भी निकलता है।

इस प्रकारसे प्राच्य-प्रतीच्य दोनों विचारोंके अनुसार गोजातिकी परम महिमा वताई गई है।

गोजातिकी इतनी महिमा होनेपर भी भारतके दुर्भाग्यसे अव दिनोंदिन गोवंशका नाश हो रहा है। वहुत वर्षकी वात नहीं, आइने-अकवरीके देखनेसे पता लगता है कि, अकवरके समयमें एक आना सेर घी और दश आने मन दूध विकता था। अव अढ़ाई रुपयेमें भी १ सेर शुद्ध घी तथा एक रुपयेमें भी तीन चार सेर शुद्ध दूध नहीं मिलता है। ४२ वर्ष पहले भी दो पैसे सेर अच्छा दूध मिलता था। अव भारतमें वह घी, दूध नहीं है। अव आस्ट्रेलिया-से जमा हुआ दूध, मक्खन भारतमें आता है, उसीसे हमारे वच्चे जीवन धारण

करते हैं। शुद्ध घीके अभावसे अब यज्ञके फल नहीं मिलते, समयानुसार वृष्टि नहीं होती, दुर्भिक्षका कराल कोप भारतमें व्याप्त है। घीकी जगह अब महुएका तेल, सांपकी चर्वी और वनस्पतिके रससे बना हुआ अप्राकृतिक घी मिलने लगा है, जिसे खाकर लोग बीमार हो रहे हैं। अब भारत गोहीन, गव्यहीन हो गया है। भारतसे गायके चमड़ा भेजनेका व्यवसाय अब दिनोंदिन उन्नति पर है। १८९१ ई० से १९०० तक प्रतिवर्ष दो करोड़ रुपयेका गोचर्म विदेश भेजा गया है। १९०१ में ५ करोड़ तीस लाखका गोचर्म बाहर भेजा गया था। १८९९-१९०० और १९००-१९०१ इन दो वर्षोंमें तीन करोड़ बीस लाखके गोचर्म विदेश भेजे गये हैं। 'Imperial gazetteer of India Vol. III. P. 189. में ये सब वृत्तान्त लिखे हुए हैं। यदि यही हाल रहा, तो आगामी ५० केवर्षके भीतर तसवीरमें ही गौमाताके दर्शन हुआ करेंगे और मूछोंमें लगाने लिये भी दूध घीका मिलना असम्भव हो जायगा।

गोजातिके इस प्रकार रोमाञ्चनकारी सत्तानाशका हेतु क्या है? इस विषयपर अनुसन्धान करनेसे निम्नलिखित प्रधान प्रधान कारण प्रतीत होते हैं:—

१—गोभक्षकोंको निष्ठुर उदरपूर्त्तिके लिये भीषण गोहत्या।

२—देशमें गोग्रास तथा गोखाद्यका अभाव।

३—गोचर भूमिका अभाव तथा प्राचीन गोचर भूमियोंका कृषिभूमिमें परिणत कर देना।

४—गोवंश-वृद्धिके लिये उत्तम सांड़का अभाव।

५—इस देशके कसाई नियत समयपर चमड़ा देनेके लिये चमड़ेके व्यापारियोंसे पेशगी रुपया ले लेते हैं। वे लोग घासके साथ विष मिलाकर या मयदे और घीमें विष मिलाकर गायोंको खिला देते हैं, अथवा जहां गायें चरती हैं, वहां डाल देते हैं। कभी कभी गायके शरीरमें फोड़ा देखकर वहीं विष लगा देते हैं। कभी कभी छूरेमें विष लगाकर गायके शरीरके खूनमें विष प्रवेश करा देते हैं। कभी गोशालासे गायें चुरा ले जाते हैं और जीते ही जी मुख बांधकर उनके चमड़े उतार लेते हैं। जब किसी गांवकी गायोंमें संक्रामक रोग फैलता है, तो उसी रोगसे मरे हुए पशुकी अँतड़ी, मांस इत्यादि दूसरे गांवके उस स्थानमें डाल आते हैं, जहां गायें चरती हैं। इस तरह वहां भी संक्रामक रोग उत्पन्न होकर गोवंशका नाश होता है।

६—भारतमें गोपालन तथा गोचिकित्सा सिखानेके लिये विद्यालयोंका अभाव ।

७—गोचिकित्सालय तथा औषधालयोंका अभाव और गोचिकित्सकोंका भी अभाव ।

८—भारतमें गोपालन, उनकी वीमारी तथा चिकित्साविषयक पुस्तकोंका अभाव ।

९—दूधके व्यापारी कृत्रिम उपायोंसे गायको दूह कर बच्चोंको अधिक दाम पर कसाईके हाथ वेच देते हैं, जिस कारण गोजाति क्षीण तथा निर्मूल हो रही है ।

१०—दूधके व्यापारी अधिक लाभकी आशासे गायको खूब दूह लेते हैं इससे वच्चोंको कम भोजन मिलता है । और वे क्रमशः रोगी तथा जीर्ण होकर मर जाते हैं ।

११—कहीं २ अहीर लोग अधिक दूधके लोभसे फूका देकर गाय दूहते हैं, जिससे उनकी गर्भ धारण शक्ति नष्ट हो जाती है । और अन्तमें वे भी कसाइयोंके हाथ वेच दी जाती हैं ।

१२—गौशालाओंमें गौओंकी रक्षा ठीक ठीक न होनेके कारण उन्हें शीत, ताप आदि कष्ट सहन करना पड़ता है और इसीसे ज्वर, चेचक, आंव, उदर रोग आदि होकर वे मर जाती हैं ।

१३—गायोंमें संक्रामक रोग फैलने पर उसका प्रतिकार नहीं किया जाता है, गायोंको हठाया या अलग अलग नहीं रखा जाता है इससे भी उनमें मृत्यु फैल जाती है ।

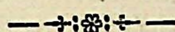
१४—सड़ी हुई नालियोंका जल तथा वर्षाके बंधे जलमें उत्पन्न खराब तृणादिको खाकर गायें बीमार हो जाती हैं और कितनी मर ही जाती हैं ।

१५—हमारे देशके धनी लोग कुत्ते तथा चिड़िये वहुत शौकसे पालते हैं, किन्तु गाय पालनेकी इच्छा उनमें वहुत ही कम पायी जाती है । अपने सामने गो वध होते देख कर भी उपेक्षा करते हैं इससे भी गो जातिका नाश हो रहा है ।

येही सब गोवंशनाशके मुख्य कारण हैं । अतः इनके हटाये विना यथोचित गोरक्षा होना असम्भव है ।

अष्टम काण्डकी प्रथम शाखा समाप्त हुई ।

व्रतोत्सव-महिमा ।



पुण्यजनक उपवासादि नियमोंका नाम व्रत है। अनर्गल सभी प्रवृत्तियां नियमोंके (Discipline) द्वारा ही क्रमशः नष्ट हो जाती हैं, इस कारण व्रतमें नियम ही मुख्यसाधन है। व्रतके लक्षणके विषयमें हेमाद्रिव्रतखण्डमें लिखा है—

> व्रतञ्च सम्यक्संकल्पजनितानुष्ठेयक्रियाविशेषरूपं
> तच्च प्रवृत्तिनिवृत्त्युभयरूपम् ।
> तत्र द्रव्यविशेषभोजनपूजादिकं प्रवृत्तिरूपं उपवासादिकं
> च निवृत्तिरूपं, तच्च नित्यं नैमित्तिकं काम्यं च ।
> नित्यमेकादश्यादि व्रतं, नैमित्तिकं चान्द्रायणादि व्रतं
> काम्यं तत्तत्तिथ्युपवासादिरूपम् ।

किसी लक्ष्यको सामने रख कर विशेष संकल्पके साथ लक्ष्यसिद्धिके अर्थ किये जानेवाले क्रियाविशेषका नाम व्रत है। व्रत प्रवृत्ति निवृत्ति भेदसे दो प्रकारके तथा नित्य नैमित्तिक काम्य भेदसे पुनः तीन प्रकारके होते हैं। द्रव्य विशेष भोजन तथा पूजादिके द्वारा साध्यव्रत प्रवृत्तिमूलक और केवल उपवासादि द्वारा साध्यव्रत निवृत्तिमूलक है। ये दोनों ही प्रकारके व्रत पुनः लक्ष्य भेदसे तीन प्रकारके होते हैं यथा नित्य नैमित्तिक और काम्य। एकादशी आदि व्रत जिनके न करनेसे प्रत्यवाय होता उन्हें नित्य व्रत कहते हैं। पापक्षय आदि निमित्तको लेकर अनुष्ठित चान्द्रायण आदि व्रत नैमित्तिक है। किसी विशेष तिथिमें विशेष कामनाके साथ अनुष्ठित व्रत, जैसा कि अवैधव्य कामनासे ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशीमें अनुष्ठित सावित्री व्रत—ऐसे व्रतोंको काम्य व्रत कहते हैं। इस प्रकारसे आर्यशास्त्रमें व्रतके दो तथा तीन भेद कहे गये हैं। इसके सिवाय कायिक और मानसिक भेदसे भी व्रतके दो भेद होते हैं, यथा हेमाद्रिव्रतखण्डमें—

> अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्मषम् ।
> एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि व्रतधारिणाम् ॥

तत्सर्वं कायिकं पुंसां व्रतं भवति नान्यथा ॥

उपवासोऽत्राहोरात्राभोजनं, आदिशब्दादयाचितादिः ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, पापशून्यता, ये सब मानस व्रत हैं। दिवारात्रि उपवास या अशक्तपक्षमें रात्रिको भोजन, अयाचितरूपसे रहना इत्यादि व्रत कायिक है। इस प्रकारसे व्रत करनेका फल क्या है, इसका उत्तर शास्त्रमें दिया गया है—

व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनैस्तथा ।

वर्णाः सर्वेऽपि मुच्यन्ते पातकेभ्यो न संशयः ॥

व्रत, उपवास, नियम तथा शारीरिक तपके द्वारा सभी वर्णके मनुष्य पापमुक्त होकर पुण्यप्रभावसे उत्तम गति लाभ करते हैं। यही कारण है कि,

'वयं सोमव्रते तव' यजु० ३।५६,

'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' यजु १।५

'सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' १।२

'व्रतमुपैष्यन्' शतपथ १।१।१।१

इत्यादि मन्त्रों द्वारा वेदमें भी व्रतकी आज्ञा की गई है।

मत्स्य, स्कन्द, पद्म, ब्रह्माण्ड, कूर्म, वराह आदि प्रायः सभी पुराणोंमें अनेक व्रतोंकी विधियां तथा विवरण देखनेमें आते हैं। व्रतके बाद जो व्रतकथा सुननेकी विधि है, उसका भी वर्णन उन्हीं पुराणोंमें किया गया है। अब नीचे व्रताधिकार तथा व्रतविषयक कुछ साधारण चर्चा की जाती है।

व्रतमें किस किसका अधिकार है, इसपर हेमाद्रिव्रतखण्डमें लिखा है कि,—

"चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीपुंसाधारण्येन व्रतेऽधिकारः"

चारों वर्णके स्त्रीपुरुषोंका व्रतमें अधिकार है। किन्तु व्रती होनेके लिये निम्नलिखित गुणोंकी सर्वदा विशेषतः व्रतकालमें नितान्त आवश्यकता बताई गई है। यथा—

निजवर्णाश्रमाचारनियतः शुद्धमानसः ।

व्रतेऽधिकृतो राजन्नन्यथा विफलश्रमः ॥

अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः ।
व्रतेष्वधिकृतो राजन्नन्यथा विफलश्रमः ॥
पूर्वं निश्चित्य शास्त्रार्थं यथावत् कर्मकारकः ।
अवेदनिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु ॥

अपने वर्ण तथा आश्रमानुसार आचारनिष्ठ, पवित्रचित्त, निर्लोभ, सत्यवादी, सकल जीवोंके हितमें रत पुरुषका ही व्रतमें अधिकार है। जो शास्त्रका मर्म जानकर कर्म करता है और वेदनिन्दक नहीं है उसीका व्रतमें अधिकार है। स्त्रियोंके लिये लिखा है—

नारी च खल्वनुज्ञाता पित्रा भर्त्रा सुतेन वा ।
विफलं तद्भ भवेत्तस्य यत् करोत्यौर्द्ध्वदेहिकम् ॥

कुमारीको पिताकी आज्ञा, सधवाको पतिकी आज्ञा और विधवाको पुत्रकी सम्मति लेकर तब व्रत करना चाहिये, अन्यथा निष्फल होगा। व्रतारम्भकी तिथिके विषयमें लिखा है—

उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक् ।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भे च समापने ॥
एतद्व्यतिरिक्तायामखण्डायां प्रारम्भकालः इति

वृद्धवशिष्ठः ।

जिस तिथिमें सूर्योदय होता है, वह यदि दिनके बीच तक न रहे तो खण्डा तिथि कहलाती है, उसमें व्रतारम्भ नहीं करना चाहिये। इससे विपरीत अखण्डा तिथिमें व्रतारम्भ करना उचित है। व्रतके पूर्वदिन संयमसे रह कर व्रतारम्भके दिन संकल्पपूर्वक आरम्भ करना होता है। अशौचादिके विषयमें लिखा है—

व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे ।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥

व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा और पुरश्चरण जपादिमें आरम्भसे पहिले सूतक लगता है, आरम्भ होनेके बाद नहीं लगता है। रजोदर्शन आदि दोषोंमें स्त्रियां स्वयं उपवास कर ब्राह्मणको प्रतिनिधि बनाकर जप पूजादि करा सकती हैं। पतिके व्रतमें स्त्री और स्त्रीके व्रतमें पति प्रतिनिधि हो सकता

है। अन्यथा पुत्र, भ्राता, भगिनी भी प्रतिनिधि हो सकते हैं। चान्द्रायण आदि व्रतमें केशमुण्डन अवश्य करना होता है। यदि किसी कारणसे मुण्डन असम्भव हो तो "मुण्डनाकरणे द्विगुणं प्रायश्चित्तम्" अर्थात् मुण्डनके बदले द्विगुण प्रायश्चित्त करना चाहिये। सधवा स्त्रियोंके लिये आदेश है कि—

सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम्।
एवमेव तु नारीणां मुण्डमुण्डनमादिशेत्॥

समस्त केश उठाकर दो अङ्गुलि परिमाण केश काट देना चाहिये। उससे केश मुण्डन हो जाता है।

यो यदर्थं चरेद्धर्मं न समाप्य मृतो भवेत्।
स तत्पुण्यफलं प्रेत्य प्राप्नुयान्मनुरब्रवीत्॥

व्रतसमाप्तिसे पूर्व ही यदि किसी व्रतीकी मृत्यु हो जाय तो आगामी जन्ममें उसे व्रतजन्य पुण्यफल प्राप्त होता है ऐसा मनुजीने कहा है। कर्मफल कदापि नष्ट नहीं होता है।

अब नित्यनैमित्तिकादि भेदसे कुछ व्रतोंके संक्षेप वर्णन किये जाते हैं।

एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या आदि नित्यव्रत कहलाते हैं। नित्यकर्मकी तरह इनका भी यही लक्षण है कि, 'अकरणात् प्रत्यवायः' अर्थात् न करनेसे पाप है। इसका कारण नित्यकर्माध्यायमें पहिले ही बताया गया है कि, जीवको अपनी स्थितिमें कायम रखनेके लिये ये सब नित्यव्रत किये जाते हैं, इनके न करनेसे जीव अपनी स्थितिसे गिर जाया करता है। इसी कारण नित्यकर्मकी तरह नित्यव्रतका ऐसा लक्षण किया गया है। एकादशीव्रतके विषयमें भविष्यपुराणमें लिखा है—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति संप्राप्ते हरिवासरे॥
अघं स केवलं भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते हरिवासरे।
तद्दिने सर्वपापानि वसन्त्यन्नाश्रितानि च॥

ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप एकादशीके दिन अन्नको आश्रय करके ही रहता है। इसलिये एकादशीके दिन जो भोजन करता है, वह पापभोजन करता है। ज्योतिष शास्त्रका सिद्धान्त है कि, एकादशी तिथिको चन्द्र:

मार्की एकादशकलाका प्रभाव जीवोंपर शुक्लपक्षमें चन्द्रमण्डल द्वारा और कृष्णपक्षमें सूर्यमण्डल द्वारा पड़ा करता है। चन्द्रमाका प्रभाव शरीर मन सभीपर रहनेसे इस तिथिमें शरीरकी अस्वस्थता और मनकी चञ्चलता सभी स्वाभाविक रूपसे बढ़ सकती है। इसी कारण उपवास द्वारा शरीरको सम्हालना और इष्ट पूजन द्वारा मनको सम्हालना एकादशी व्रतविधानका मुख्य रहस्य है, जिसको भविष्यपुराणने ऊपर लिखित श्लोकोंके द्वारा विधिरूपसे बताया है। अष्टमी तिथिके बाद रसवृद्धिकर पूर्णिमा तथा अमावस्या तिथिके लिये रस-संचारका विशेष प्रारम्भ एकादशी तिथिसे ही होता है, जिसका विशेष आघात शरीर मनपर होना निश्चय है, इसी कारण स्त्री पुरुष विशेषतः विधवाओंके लिये इसको अवश्य पालनीय नित्यव्रत करके ही बताया गया है। चन्द्रमा शिवललाटमें है, इस कारण उसके प्रभावनाशके लिये एकादशीमें विष्णु पूजनका उपदेश किया गया है। इसी कारण एकादशीको 'हरिवासर' कहते हैं। यथा—

शुक्ले वा यदि वा कृष्णे विष्णुपूजनतत्परः।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥

(भविष्यपुराण)

विष्णुपूजापरायण होकर शुक्ला कृष्णा दोनों तिथियोंकी ही एकादशीमें उपवास करना चाहिये। अन्य सम्प्रदायके उपासकगण अपने अपने इष्टदेवमें विष्णु भावना करके पूजा कर सकते हैं।

गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥

(लिङ्गपुराण)

विधवा या भवेन्नारी भुञ्जीतैकादशीदिने।
तस्यास्तु सुकृतं नश्येद् भ्रूणहत्या दिने दिने॥

(कात्यायनः)

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, साग्निक किसीको भी एकादशीके दिन भोजन नहीं करना चाहिये। यदि विधवा स्त्री एकादशीको भोजन कर ले, तो उसका समस्त पूर्वपुण्य नष्ट हो जाता है और भ्रूणहत्याका पाप लगता है—असमर्थ पक्षमें अपने पुत्र अथवा ब्राह्मणके द्वारा उपवास करानेकी विधि वायुपुराणमें

मिलती है। बालक, वृद्ध या रोगी फलाहार करके भी एकादशी कर सकते हैं ऐसा मार्कण्डेय ऋषिका मत है। व्रतकालके विषयमें लिखा है—

दशम्येकादशी यत्र तत्र नोपवसेद्‌ बुधः।
अपत्यानि विनश्यन्ति विष्णुलोकं न गच्छति ॥

(वशिष्ठः)

अरुणोदयवेलायां दशमी संयुता यदि।
तत्रोपोष्या द्वादशी स्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

(कण्वः)

प्रातः स्नात्वा हरिं पूज्य उपवासं समर्पयेत्।
पारणं तु ततः कुर्याद्व्रतसिद्ध्यै हरिं स्मरन् ॥

(कात्यायनः)

पारणमन्त्र—ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥

दशमीयुक्त एकादशीमें उपवास नहीं करना चाहिये। उसमें सन्तानका नाश होता है और ऊर्द्ध्वगति रुकती है। यदि अरुणोदयके समय दशमी और एकादशीका योग हो तो द्वादशीको उपवास करके त्रयोदशीको पारणा करनी चाहिये। प्रातःकाल स्नान तथा हरिपूजनके अनन्तर हरिको उपवास समर्पण करना होता है। उसके बाद हाथमें जल लेकर पारणमन्त्र पढ़ते हुए व्रतपारणा करनी होती है। यही एकादशीका पारण कहलाता है। इस प्रकारसे एकादशीरूप नित्यव्रतका अनुष्ठान होता है। एकादशीकी तरह अमावस्या और पूर्णिमाको भी नित्यव्रत कहा जाता है। इन दोनों तिथियोंमें ही पृथिवी, चन्द्र और सूर्य समसूत्रमें होते हैं। अमावस्यामें चन्द्र, पृथिवी और सूर्यके बीचमें होता है। इस कारण चन्द्रका जो अंश पृथ्वीकी ओर होता है, उसमें सूर्यकिरणका स्पर्श न होनेसे उस दिन चन्द्र दीखता नहीं। इसके सिवाय चन्द्रमण्डल उस दिन और कहीं चला नहीं जाता। दूसरी ओर पूर्णिमा तिथिको पृथिवी, चन्द्र और सूर्यके बीचमें होती है। इस कारण सम्पूर्ण मण्डलके साथ चन्द्रमाका प्रकाश पृथिवीपर हो जाता है। अतः सिद्ध हुआ कि, समसूत्रमें रहनेके कारण पूर्णिमा और

अमावस्या दोनों तिथियोंमें ही चन्द्रका विशेष प्रभाव पृथिवीपर हो जाता है। जिससे पृथिवीस्थ जीवोंके शरीर मन दोनों ही अस्वस्थ तथा चञ्चल हो सकते हैं। जब इन दोषोंके निवारणार्थ एकादशकलायुक्त एकादशीमें ही व्रत करनेकी आवश्यकता है, तो पूर्णकलायुक्त पूर्णिमा तथा अमावस्यामें भी अवश्य ही व्रत करना चाहिये यही शास्त्रका सिद्धान्त है। यही अमावस्या तथा पूर्णिमाके नित्यव्रत होनेका कारण है, जिसके अकरणमें विशेष प्रत्यवाय और वात आदि कितनी ही व्याधियोंका आक्रमण हो सकता है। इन दिनोंमें ब्रह्मचर्य-रक्षा, मांसादि न खाना, गङ्गादि देव नदियोंमें स्नान करना इत्यादि शुभकर्मके अशेष फल बताये गये हैं। यथा—

"पक्षान्ते स्रोतसि स्नायात् तेन नायाति मत्पुरम्"

(तिथितत्व)

महाज्यैष्ठ्यां तु यः पश्येत् पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।
विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्षं गङ्गाम्बुमज्जनात् ॥

(तिथितत्व)

अमावस्या या पूर्णिमाको गङ्गादि तीर्थमें स्नान करनेसे यमलोकको नहीं जाना पड़ता है। महाज्यैष्ठी पूर्णिमामें पुरुषोत्तमका दर्शन करनेसे विष्णुलोक प्राप्ति और गङ्गा स्नान करनेसे मोक्षलाभ होता है। ये ही सब नित्यव्रतके पापनाशक तथा निःश्रेयसप्रद दृष्टान्त हैं।

अब नैमित्तिक व्रतोंका वर्णन किया जाता है। पहिले ही कहा गया है कि, पापक्षयके लिये प्रायश्चित्तरूपसे अनुष्ठेय व्रतोंको नैमित्तिक व्रत कहते हैं। 'प्रायस्य पापस्य चित्तं विशोधनं यस्मात्' जिस कार्यसे पापका शोधन या नाश हो उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। पाप कैसे होता है इस विषयमें महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है—

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥

शास्त्रविहित कर्मोंका न करना, शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंका करना और इन्द्रियोंके असंयमसे व्यभिचारादि—इन तीनोंके द्वारा पाप और जीवका पतन होता है। विष्णुसंहितामें इस प्रकारसे उत्पन्न पाप नौ भागमें विभक्त किये गये हैं, यथा—अतिपातक, महापातक, अनुपातक, उपपातक, जातिभ्रंशकर, संकरी-

करण, अपात्रीकरण, मलावह और प्रकीर्णपातक। अतिपातक—माता, कन्या या पुत्रवधू-गमन। महापातक—ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णस्तेय, गुरु-पत्नी गमन तथा इन पापियोंके साथ संसर्ग। अनुपातक—पितृव्यपत्नी, मातामही, मातुलानी, सास, राजपत्नी, पितृमातृभगिनी, श्रोत्रियपत्नी, पुरोहितपत्नी, अध्यापकपत्नी, बन्धुपत्नी, भगिनीकी सखी, सगोत्रा स्त्री, चाण्डाली, रजस्वला या शरणागत स्त्रीगमन, उच्चजाति बतानेके लिये मिथ्याभाषण, गुरुजनोंके विषयमें मिथ्याभाषण। उपपातक—गोवध, अयाज्ययाजन, परस्त्री-गमन, अभोज्य-भोजन, चण्डालादि अस्पृश्य जातिका अन्न भोजन, गुरुनिन्दा, वेद-निन्दा, परधनहरण इत्यादि। जातिभ्रंशकर—ब्राह्मण-पीड़न, मित्रवंचना, मद्यका आघ्राण लेना, पुंमैथुन, पशुमैथुन। संकरीकरण—ग्राम्य तथा अरण्य-पशु-हिंसा। अपात्रीकरण—कुत्सितवाणिज्य, शूद्रसेवा, मिथ्याभाषण। मला-वह—पक्षिहत्या, जलचरहत्या, मत्स्यादिहत्या, कृमिकीटहत्या, मद्यसंश्लिष्ट द्रव्यभोजन। प्रकीर्ण—अन्यान्य सब पाप।

(वि० संहिता ३२ से ४२ अ० तक)

इन नौ प्रकारके पापोंके प्रायश्चित्तरूपसे आर्यशास्त्रमें विविध नैमित्तिक व्रत बताये गये हैं। यथा—चान्द्रायण, पराकव्रत, प्राजापत्य, तप्तकृच्छ्र इत्यादि। अब नीचे इनके कुछ वर्णन किये जाते हैं। पापी यदि लोकसमाजमें पापको बोला करे या पापके लिये अनुताप करे तो पाप अवश्य ही हलका हो जाता है। इस कारण मनुसंहिताके ११ अध्यायमें इसका विशद वर्णन है। पापका प्रायश्चित्त करके यदि चित्तमें प्रसाद आजाय तो जानना चाहिये कि पापी पाप-मुक्त हो गया। अन्यथा शास्त्रमें पुनः प्रायश्चित्तकी आज्ञा है। प्रायश्चित्तमें केश-वपन आवश्यक कार्य है, क्योंकि—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् केशं वपाम्यहम्॥

ब्रह्महत्यादि समस्त पाप केशका आश्रय करके रहता है, इसलिये प्राय-श्चित्तमें केशवपन करना चाहिये। मिताक्षरामें लिखा है—

विद्वद्विप्रनृपस्त्रीणां नेष्यते केशवापनम्।
ऋते महापातकिनो गां हन्तुश्चावकीर्णिनः॥

विद्वान् ब्राह्मण, राजा और स्त्री इनके प्रायश्चित्तमें केशवपन नहीं है।

किन्तु महापातक या गोहत्या पापमें सभीको केशवपन करना चाहिये। सधवा स्त्रीके विषयमें पहिले ही कहा गया है कि, इनका केवल दो अंगुल केश काट देना चाहिये। प्रायश्चित्तके पूर्वदिन केशनखवपन करके स्नानके अन्तमें घृत-मात्र आहार कर दिन काटना चाहिये। उसदिन सन्ध्याके समय संकल्प और दूसरे दिनसे प्रायश्चित्त प्रारम्भ करना चाहिये। स्नानके बाद चार ब्राह्मणके समीप आर्द्रवस्त्र जाकर अपना पाप बोलना चाहिये और उससे प्रार्थना करके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था ले लेनी चाहिये। यही शास्त्रीय विधि है। अब पापानुसार प्रायश्चित्त बताया जाता है।

अतिपातकका प्रायश्चित्त नहीं है, अग्निप्रवेश आदि पूर्वक मृत्यु ही उसका प्रायश्चित्त है। किन्तु असमर्थपक्षमें द्विगुण द्वादशवार्षिक व्रत और ज्ञानतः इसका द्विगुण प्रायश्चित्त भी शास्त्रमें पाया जाता है। इसमें भी अत्यन्त होने-पर प्रचुर धेनुदानका प्रायश्चित्त लिखा गया है।

महापातकमें कहीं कहीं मरणप्रायश्चित्त, कहीं कहीं द्वादशवार्षिक व्रत और असमर्थ पक्षमें धेनुदान लिखा गया है। अतिकृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त भी इसमें किये जाते हैं।

उपपातक, अनुपातक, आदिमें चान्द्रायण प्राजापत्य आदि व्रत बताये गये हैं। सभी प्रायश्चित्त अज्ञानतः पापमें आधा और स्त्री, बालक, रोगी तथा वृद्धोंके लिये आधा बताया गया है। सभी प्रायश्चित्तोंमें असमर्थ पक्षमें धेनु-दान लिखा गया है।

और सब पाप अर्थात् अपात्रीकरण, मलावह आदि पातकोंमें सामान्य प्रायश्चित्त बताये गये हैं। इनमें विद्वान्गण परामर्श करके लघु चान्द्रायण, पादकृच्छ्र, उपवास, पञ्चगव्यपान, गायत्री जप, गङ्गा-स्नान, अनुताप, शिरो-मुण्डन आदि जो कुछ बतावें सो ही शास्त्रसम्मत जानना चाहिये।

अब प्रायश्चित्तरूपसे कुछ नैमित्तिक व्रतोंके विधान लिखे जाते हैं। कृच्छ्र-चान्द्रायण व्रतके विषयमें स्मृतियोंमें लिखा है—

तिथिवृद्ध्या चरेत् पिण्डान् शुक्ले शिख्यण्डसंमितान्।
एकैकं ह्रासयेत् पिण्डान् कृच्छ्रचान्द्रायणं चरेत्॥

(देवल ८१)

एकैकं वर्द्धयेन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्।
अमावस्यान्न भुञ्जीत एष चान्द्रायणो विधिः॥

(अत्रि ११२)

सब प्रकारसे संयत रहकर मयूराण्ड जैसा एक एक ग्रास शुक्लपक्षमें बढ़ाता हुआ और कृष्णपक्षमें घटाता हुआ एक मास तक व्रत करनेसे चान्द्रायण व्रत होता है। शास्त्रमें चान्द्रायण व्रत चार प्रकारके बताये गये हैं यथा—पिपीलिकामध्य चान्द्रायण, यवमध्य चान्द्रायण, यति-चान्द्रायण और शिशु-चान्द्रायण। पिपीलिका मध्यका लक्षण यह है—

एकैकं ह्रासयेत् कृष्णे शुक्लपक्षे विवर्द्धयेत्।
उपस्पृशंस्त्रिसवनमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्॥

कृष्ण प्रतिपदाको व्रत प्रारम्भ करके प्रतिपदाको १४ ग्रास, द्वितीयाको १३, तृतीयाको १२ इस तरह घटाता हुआ अमावस्याके दिन उपवास करना होता है। पुनः शुक्ला प्रतिपदाको एक ग्रास, द्वितीयाको २, तृतीयाको ३ इस तरह बढ़ा कर पूर्णिमाको १५ ग्रास भोजन करना होता है। प्रतिदिन त्रिसन्ध्या स्नान करना होता है। इस प्रकार एक मासका व्रत पिपीलिका मध्य चान्द्रायण है। यवमध्यचान्द्रायण यथा—

एवमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्व यवमध्यमे।
शुक्लकृष्णादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम्॥

इसकी भी विधि पूर्ववत् है, केवल भेद इतना ही है कि यवमध्यचान्द्रायण शुक्ला प्रतिपदाको प्रारम्भ करना होता है। शुक्ला प्रतिपदाको एक ग्रास, द्वितीयाको दो ग्रास यों बढ़ाकर पूर्णिमाको १५, तदनन्तर कृष्णसे घटा कर अमावस्याके दिन उपवास करना होता है। यवकी तरह बीचकी तिथियोंमें ग्रास अधिक होनेके कारण इसका नाम यवमध्य और पिपीलिकाकी तरह बीचकी तिथियोंमें ग्रास कम होनेके कारण पूर्व चान्द्रायणका नाम पिपीलिका मध्य रक्खा गया है। यतिचान्द्रायणका लक्षण यथा—

अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिण्डान् मध्यन्दिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरेत्॥

यतिचान्द्रायणमें सुसंयत रह कर प्रति मध्याह्नको आठ ग्रास मात्र भोजन करना होता है। इस तरह एक मासका यह व्रत है। शिशुचान्द्रायण यथा—

चतुरः प्रातरश्नीयात् पिण्डान् विप्रः समाहितः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥

इसमें प्रातः काल चार ग्रास और सूर्यास्तके बाद चार ग्रास मात्र एक महीने तक भोजन करना होता है। सभी चान्द्रायणमें यथाशक्ति त्रिसन्ध्या स्नान और सकल प्रकार संयम विहित है। ये ही चान्द्रायणरूप नैमित्तिक व्रतके ४ प्रकार हैं।

अत्रिसंहितामें (११५–१२८) प्रायश्चित्तरूपसे अनेक व्रतोंके वर्णन किये गये हैं, उनमेंसे कुछ नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

पद्मोदुम्बरविल्वैश्च कुशोऽश्वत्थपलाशयोः।
एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रन्तदुच्यते ॥ ११५ ॥

पद्मपत्र, उडुम्बर पत्र (गूलरका पत्ता) विल्वपत्र, कुशा, पीपलका पत्र और पलाश (ढाक) का पत्र इन सबको उबालकर पानी पीनेसे पर्णकृच्छ्र व्रत होता है।

पञ्चगव्यं च गोक्षीरदधिमूत्रसकृद्धृतम्।
जग्ध्वा परेऽन्ह्युपवसेदेष सान्तपनो विधिः ॥ ११६ ॥

गव्यदुग्ध, गव्यदधि, गोमूत्र, गोमय और गोघृत-इस तरह पञ्चगव्य पान करके दूसरे दिन निर्जल उपवास करने पर सान्तपन व्रत होता है।

पृथक्सान्तपनैर्द्रव्यैः षड़हः सोपवासकः।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनं स्मृतम् ॥ ११७ ॥

पञ्चगव्योंमेंसे एक एक दिन एक एक, छठे दिन सारे और सातवें दिन उपवास करने पर महासान्तपनव्रत होता है।

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं भुङ्क्ते त्वयाचितम्।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात् प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ११८ ॥
सायन्तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पञ्चदशः स्मृताः।
अयाचिते चतुर्विंशे परेऽन्ह्यनशनं स्मृतम् ॥ ११९ ॥

तीन दिन केवल शामको, तीन दिन केवल सुबहको तथा तीन दिन अयाचित भोजन करके और तीन दिन उपवास करनेसे प्राजापत्य व्रत होता

है। इस व्रतमें शामको १२ ग्रास, सुबहको १५ ग्रास, अयाचित २४ ग्रास खानेकी विधि है।

एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयादतिकृच्छ्रं तदुच्यते ॥ १२० ॥

तीन दिन रातको, तीन दिन दिनको तथा तीन दिन अयाचित रूपसे केवल एक एक ग्रास खाकर और तीन दिन उपवास करनेपर अतिकृच्छ्र व्रत होता है।

कुक्कुटाण्डप्रमाणं स्याद्द यावद्द यस्य मुखं विशेत् ।
एतद्द ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कायशोधनम् ॥१२१॥

इन व्रतोंमें भोजनग्रासका परिमाण कुक्कुटाण्ड जैसा रक्खा गया है, अथवा अनायास जितना एक ग्रासमें मुखमें घुस सके उतना भी हो सकता है।

त्र्यहमुष्णं पिवेदापस्त्र्यहमुष्णं पिवेत् पयः ।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ १२२ ॥
षट्पलानि पिवेदापस्त्रिपलन्तु पयः पिवेत् ।
पलमेकन्तु वै सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ १२३ ॥

तीन दिन छः पल परिमित उष्णजल, तीन दिन तीन पल परिमित उष्ण दुग्ध, तीन दिन एक पल परिमित उष्ण घृत पान करके तीन दिन वायुभोजी रहनेसे तप्तकृच्छ्र व्रत होता है।

दध्ना च त्रिदिनं भुङ्क्ते त्र्यहं भुङ्क्ते च सर्पिषा ।
क्षीरेण तु त्र्यहं भुङ्क्ते वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥१२४॥
त्रिपलं दधिक्षीरेण पलमेकं तु सर्पिषा ।
एतदेव व्रतं पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते ॥ १२५ ॥

तीन दिन तीन पल परिमित दधि, तीन दिन तीन पल परिमित क्षीर तथा तीन दिन एक पल परिमित घृत भोजन करके तीन दिन वायुभक्षी रहनेपर वैदिक कृच्छ्र व्रत होता है।

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रः प्रकीर्त्तितः ॥ १२६ ॥

एकदिन एकवार भोजन, एकदिन रात्रिको अयाचित भोजन और एक-दिन उपवास करनेसे पादकृच्छ्र व्रत होता है।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम्।
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्त्तितः॥ १२७॥

२१ दिन दूधमात्र पीकर रहनेसे कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत होता है, और १२ दिन उपवास करनेसे पराक व्रत होता है।

पिण्याकदधिशक्तूनां ग्रासश्च प्रतिवासरम्।
एकैकमुपवासः स्यात् सौम्यकृच्छ्रः प्रकीर्त्तितः॥ १२८॥

चार दिन तक घोल, दहि और सत्तुका एक एक ग्रास खाकर एकदिन उपवास करनेसे सौम्यकृच्छ्र व्रत होता है।

इस प्रकारसे स्मृतिशास्त्रमें नैमित्तिक व्रतोंका विधान और किन् किन् पापोंके प्रायश्चित्तरूपसे इनका प्रयोग होता है वह भी बताया गया है, जो बाहुल्यभयसे यहां पर नहीं सन्निवेशित किया गया।

अब काम्यव्रतोंके विषयमें कहा जाता है। पहिले ही कहा गया है, कि किसी कामनाकी पूर्त्तिके लिये अनुष्ठित व्रतोंको काम्य व्रत कहते हैं। यथा-शास्त्र अनुष्ठित होनेपर काम्य व्रतसे इप्सित फलकी प्राप्ति होती है और येही सब व्रत यदि निष्कामभावसे किये जायं तो इनके द्वारा चित्तशुद्धि होकर परमात्माकी ओर व्रती अनायास अग्रसर हो सकते हैं। क्योंकि प्रत्येक व्रतमें जब संयम तथा इष्ट पूजा है तो निष्काम रूपसे संयम द्वारा आत्मशुद्धि और इष्ट पूजा द्वारा सालोक्यादि मुक्ति अवश्यम्भावी है। काम्यव्रतके साधारणतः तीन प्रकार अनुष्ठान पाये जाते हैं।

(१) कुछ काम्य व्रत ऐसे हैं जो भारतके सभी प्रदेशोंमें एकही नाम तथा एकही रूपसे अनुष्ठित होते हैं। (२) कुछ काम्यव्रत ऐसे हैं जो भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें भिन्न-भिन्न नामसे अनुष्ठित होते हैं, किन्तु उनकी अनुष्ठान शैली एकही प्रकारकी होती है। (३) कुछ काम्यव्रत ऐसे हैं जो देश तथा अधिकार भेदसे भिन्न-भिन्न नाम तथा भिन्न-भिन्न प्रकारसे अनुष्ठित होते हैं। इन तीन प्रकारोंके सिवाय कहीं कहीं ऐसा भी देखा जाता है, कि एक प्रदेशमें जो सामान्य कृत्य है, दूसरे प्रदेशमें वही व्रत है और अन्य प्रदेशमें वही अति प्रसिद्ध पूजा है। दृष्टान्त रूपसे समझ सकते हैं, कि कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी जिस नवमीको दाक्षि-

णात्य लोग स्नानदान मात्र करते हैं, पञ्जाब, काश्मीर और गुजरात प्रदेशमें उसीका नाम दुर्गा नवमी है, उसदिन उपवास करके व्रत आदि इन देशोंमें किया जाता है। किन्तु वङ्ग देशमें यही शुक्ला नवमी जगद्धात्री पूजाका दिन है। मनुष्योंकी प्रकृति, प्रवृत्ति तथा अधिकारभेद ही इन सब भेदोंके मूलमें है। दक्षिण देशके लोग अधिकांश वैष्णव, पञ्जाब, गुजरात प्रान्तके लोग अपेक्षाकृत शक्ति उपासक और वङ्गदेशके मनुष्य विशेष शक्ति उपासक होते हैं, इसी कारण एक ही व्रतके ऐसे तीन प्रकार हो गये। इस प्रकारसे शारदीय नवरात्रमें भी देखा जाता है, कि वङ्गदेशीयगण जिस धूम धामके साथ दुर्गापूजा करते हैं, उत्तर पश्चिम देशमें ऐसी पूजा न होकर श्रीभगवान् रामचन्द्रकी सवारी आदि निकाली जाती है और रामलीलोत्सव मनाया जाता है। इसमें भी प्रकृति प्रवृत्ति तथा देशकाल भेद ही कारण है। अब नीचे कुछ व्रतोंका वर्णन करते हुए इन्हीं विषयोंकी पुष्टि की जाती है।

वैशाख शुक्ला तृतीया—इस व्रतको अक्षय तृतीया भी कहते हैं। यह सर्वत्र प्रचलित है। कर्णाटकमें इस पर्वको बलराम जयन्ती कहते हैं और वहांके निवासी इसदिन बलरामकी पूजा करते हैं। वङ्गालमें इस दिन ब्राह्मणको केवल यव खिलानेकी और यवश्राद्ध, जलदान तथा पार्वणश्राद्ध आदि करनेकी विधि प्रचलित है। वङ्ग तथा मिथिलाके लोग इस दिन सत्य-युगकी उत्पत्ति मानते हैं। इसी दिन हिमालयपर आकाश गंगाका अवतरण और यवान्नको सृष्टि हुई है। महाराष्ट्र, गुजरात तथा तैलंग देशियोंके मतमें इस दिन त्रेता युगकी उत्पत्ति हुई है और इसीदिन भगवान् परशुराम प्रकट हुए हैं। वे लोग इसदिन परशुरामके उद्देश्यसे अर्घ्यदान करते हैं।

वैशाखी पूर्णिमा—इस व्रतको चन्दनयात्रा फूलडोल कहते हैं। यह व्रत केवल वंगदेशमें ही प्रचलित है। द्राविड़ तथा तैलङ्गमें इस तिथिको व्यासपूर्णिमा होती है, व्यासदेवकी पूजा और दही अन्नका दान किया जाता है। गुजरात और महाराष्ट्रमें इस दिन कूर्मजयन्ती होती है। कूर्मावतार विष्णुकी पूजा की जाती है।

वैशाख शुक्ला चतुर्दशी—इसको नृसिंहचतुर्दशी भी कहते हैं। नेपाल, द्रविड़ और मिथिलाको छोड़ अन्य प्रदेशोंमें यह व्रत प्रचलित है। सब कामनाएं पूर्ण होनेकी कामनासे यह व्रत किया जाता है। मध्याह्नके समय नृसिंह-भगवान्की पूजा होती है। इसी दिन नृसिंहावतार हुआ था।

ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी—इसको सावित्री चतुर्दशी या वटसावित्री कहते हैं।

बंगाल, जम्मु और मिथिलामें एक ही दिन यह व्रत होता है। सौभाग्यवती रहनेके लिये प्रायः स्त्रियां इस व्रतको करती हैं। द्रविड़, महाराष्ट्र, कर्णाट और गुजरात प्रदेशमें ज्येष्ठ पूर्णिमाको वटसावित्री व्रत होता है। पूजाका प्रकरण प्रायः एक ही है।

ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी—इसको आरण्यषष्ठी भी कहते हैं। केवल बङ्गालमें यह पूजा होती है। द्रविड़ तथा तैलंग देशमें इसके पहिले दिन आरण्य गौरी नामका एक पर्व होता है। उत्कलमें उसी दिन शीतलाष्टमी होती है। इस दिन स्त्रियां पंखा हाथमें लिये वनमें जाकर षष्ठी देवीकी पूजा करती हैं। वंगलमें इस दिन दामादका आदर करना प्रसिद्ध है। आरण्य षष्ठी व्रतकी कथासे स्पष्ट जाना जाता है कि मृतवत्सा स्त्रीके सन्तान जीवित होनेसे उसका बड़ा ही आदर करना होता है।

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी—इसको दशहरा भी कहते हैं। यह सभी प्रदेशमें प्रचलित है। बंगाल और उत्कलमें गंगापूजाके साथ मनसा देवीकी भी पूजा की जाती है। इस दिन गंगास्नान करनेसे कायिक, वाचिक, मानसिक दस प्रकारके पाप नष्ट होते हैं। प्रसिद्ध है, कि इसी दिन पृथ्वीतलपर गंगावतरण हुआ है। स्थूलरूपसे गंगाजलकी वृद्धि भी उसी दिनसे होने लगती है।

आषाढ़ शुक्ला एकादशी—इसको विष्णुशयनी एकादशी कहते हैं। यह व्रत सर्वत्र प्रचलित है। इस दिनसे चातुर्मास्य व्रतका आरम्भ होता है। द्रविड़, कर्णाट और तैलंगमें इस दिन गोपद्म व्रत किया जाता है, विष्णुकी पूजा होती है। महाराष्ट्र लोग इस दिन कोकिलाव्रत करते हैं। इस व्रतकी उपास्य देवता गौरीदेवी है।

श्रावण पूर्णिमा—इस व्रतका नाम उपाकर्म तथा रक्षाबन्धन भी है। बङ्गालको छोड़कर सर्वत्र प्रचलित है। नेपाल, पञ्जाब, काश्मीर और मिथिलामें इसको ऋषितर्पणी कहते हैं और इस दिन ऋषियोंका तर्पण किया जाता है। महाराष्ट्र और तैलंगमें इसको हयग्रीव जयन्ती कहते हैं और भगवान् हयग्रीवकी पूजा करते हैं। उत्कलमें बलभद्र जयन्ती कहते हैं और बलभद्रकी पूजा करते हैं।

भाद्रकृष्णाष्टमी—इसको जन्माष्टमी व्रत कहते हैं। श्रीभगवान्‌के पूर्णावतार श्रीकृष्ण भगवान्‌के प्रकट होनेका दिन है। यह व्रत सर्वत्र प्रचलित है।

भाद्रशुक्लाष्टमी—इसको दुर्वाष्टमी तथा महालक्ष्मी व्रत कहते हैं। बङ्गालमें दुर्वाष्टमी होती है। काश्मीरमें इस दिनसे चतुर्दशी तक किसी एक दिन महालक्ष्मी देवीकी पूजा होती है। महाराष्ट्र और गुजरातमें षष्ठीके दिन गौरी देवीका आवाहन कर सप्तमीको पूजन और अष्टमीको विसर्जन किया जाता है। इसके सिवाय अन्नपूर्णाकी पूजा और महालक्ष्मीकी यात्रा समारोहसे की जाती है। कर्णाट और तैलङ्गमें इस दिन ज्येष्ठा व्रत होता है। उत्कल और बंगालमें इस दिन दुर्गाष्टमी होनेके कारण दुर्गापूजन तथा राधाजन्माष्टमी होनेके कारण राधाजीका पूजन होता है। मिथिलामें इस दिन गोष्ठाष्टमी होती है, महालक्ष्मीका व्रत किया जाता है और कथा सुनी जाती है, पुत्र पौत्रादिके लाभकी कामनासे हविष्यभोजन कर ज्येष्ठा नक्षत्रमें तीन दिन ज्येष्ठा देवीकी पूजा करनी होती है। इनके स्तवमें लक्ष्मी, सरस्वती और उमा तीनोंके स्तव मिश्रित हैं।

देवी नवरात्र—आश्विन शुक्ला प्रतिपदासे नवमी तक नौ दिनको नवरात्र कहते हैं। बङ्गाल और मिथिला प्रदेशको छोड़कर अन्यत्र दुर्गाप्रतिमाकी स्थापना और पूजाका नियम नहीं है, किन्तु इस प्रतिपदासे लेकर नौ दिन तक प्रायः सर्वत्र ही घटस्थापन, देवीपूजन और चण्डी- पाठ किया कराया जाता है। नवरात्रके समय द्राविड़में वेङ्कटेश विष्णुकी पूजा, पञ्चमीके दिन उपाङ्ग ललिताव्रत, सप्तमीके दिन पुस्तकमण्डल और सरस्वतीकी पूजा, अष्टमीके दिन दुर्गाष्टमीको दुर्गापूजा और महानवमीको देवीके अश्व-आयुधादिकी पूजा की जाती है। नेपालमें सप्तमीके दिन पत्रिका-प्रवेशन, अष्टमी नवमीके दिन महाष्टमी व नवमीके कृत्य तथा दुर्गापूजन होता है। जम्बुमें नवरात्रके अन्तर्गत सरस्वतीशयन नामक एक पर्व होता है और दुर्गाष्टमीके दिन दुर्गापूजा भी की जाती है। वहां महानवमीको मन्वादि मानते हैं। पञ्जाब और काश्मीरमें इस उपलक्ष्यसे सरस्वती और दुर्गाकी पूजा की जाती है। महाराष्ट्रमें इस समय सरस्वती और दुर्गाकी पूजा, सरस्वतीके निकट बलिदान और देवीका विसर्जन किया जाता है। यहां भी मन्वादि कहते हैं। इसके सिवाय ललितावैनायकी व्रत और मातामहश्राद्ध करनेकी भी विधि है। कर्णाटमें वेदादिपाठ, उपाङ्गललिता व्रत तथा सरस्वती, दुर्गा और अश्व आयुधादिकी पूजाका नियम है। गुजरातमें महालक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा और अश्व-आयुधादिकी पूजा होती है। विनायक और ललिताका व्रत तथा मातामहका श्राद्ध भी किया जाता है। तैलंगमें दुर्गा और सरस्वतीकी पूजा और उपाङ्ग-

ललिता तथा गौरीका व्रत होता है। महानवमीको मन्वादि और दुर्गाष्टमीको कालिकाष्टमी कहते हैं। उत्कलमें दुर्गापूजा होती है और महाष्टमीके दिन महाष्टमी व्रत एवं महानिशाको बलि देनेका नियम है। मिथिलामें प्रतिपदाके दिन कलशस्थापन कर द्वितीयाके दिन रेमन्तकी पूजा करते हैं। षष्ठीके दिन गज पूजा और विल्वाभिमन्त्रण, सप्तमीके दिन पत्रिका प्रवेशन, अष्टमीके दिन महाष्टमी व्रत और महानवमीके दिन त्रिशूलिनी देवीकी पूजाका नियम है। युक्त प्रदेशमें दुर्गापूजा तथा रामलीला होती है। नवमीके बाद दशमीको विजया दशमीका कृत्य होता है। इसको दशहरा भी कहते हैं। यह व्रत सर्वत्र प्रचलित है। द्राविड़में इस दिन द्विदलव्रतका आरंभ होता है। महाराष्ट्र और गुजरातमें इस दिनको बौद्धजयन्ती कहते हैं। मिथिलामें इसदिन अपराजिता देवीकी पूजा होती है।

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी—इसको भूत चतुर्दशी या नरक चतुर्दशी भी कहते हैं। बंगालमें इस दिन चतुर्दश यमपूजा, अपामार्ग भ्रामण, उल्कादान, चतुर्दश शाक भोजन, आर दीपदान आदि किया जाता है। द्राविड़, महाराष्ट्र, कर्णाट, गुजरात और तैलंग तथा युक्तप्रान्तमें इसको नरक चतुर्दशी कहते हैं। वहां इसदिन यम आदिका तर्पण किया जाता है। युक्त प्रान्तमें यम तर्पण, दीप-दान, अपामार्ग भ्रामण, अभ्यंग स्नान आदि किया जाता है, उत्कलमें यम तर्पण और अपामार्ग भ्रामण होता है। युक्तप्रान्तमें इस दिन हनुमज्जयन्ती भी मनायी जाती है।

कार्तिकी पूर्णिमा—इसको रास पूर्णिमा भी कहते हैं। बंगाल और उत्कलमें इसदिन रासयात्रा होती है। बंगाल व उत्कलमें इसे व्यास पूर्णिमा कहते हैं और व्यास देवकी पूजा करते हैं। महाराष्ट्र, कर्णाट और तैलंगमें तथा मिथिलामें इसे मन्वादि मानते हैं। मिथिलामें इसदिन सब देवता शयनसे उठते हैं ऐसा माना जाता है। उत्कलमें इसदिन रासयात्राकी समाप्ति एवं गोस्वामी मतसे धात्रीवृत्त होता है। दाक्षिणात्यमें इसदिन त्रिपुरोत्सव नामक पर्व होता है। इसदिन महादेवका पूजन और सायंकाल दीपदान होता है। युक्तप्रान्त आदिमें इसदिन गंगास्नानका बड़ा माहात्म्य माना जाता है। रात्रिको स्त्रियां तुलसी पूजन भी करती हैं।

माघ शुक्ला पञ्चमी—इसको श्रीपंचमी या वसन्तोत्सव भी कहते हैं। बंगदेश तथा उत्कलमें प्रचलित है। तेलंग और द्राविड़में इसे लक्ष्मी-पञ्चमी

कहते हैं। अन्यत्र युक्तप्रान्त आदिमें इसे वसन्तपञ्चमी कहते हैं और विष्णुकी पूजा व वसन्तोत्सव करते हैं।

फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी—इसको महाशिवरात्रि व्रत कहते हैं। यह व्रत सर्वत्र प्रचलित है, इसमें उपवास करके रात्रिके चार प्रहरमें चार बार शिवपूजनकी विधि है।

फाल्गुनी पूर्णिमा—इसको दोलयात्रा भी कहते हैं। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा होती है। बंगाल और उत्कलमें इस व्रतका नाम दोल-यात्रा अन्यत्र इसका नाम होलिकोत्सव है। इसमें होलीदाहन नृत्य-गीतादि होते हैं। मिथिलामें इस दिनको कलियुगान्त भी कहते हैं।

चैत्र कृष्णाष्टमी—इस व्रतमें शाक द्वारा पितृगणका पार्वण श्राद्ध किया जाता है, इसलिये इसका नाम शाकाष्टका भी है। बंगाल, द्राविड़, उत्कल और मिथिलामें प्रचलित है। द्राविड़, उत्कल और तेलंगमें इस दिन सीता-व्रत नामक एक व्रत भी किया जाता है। महाराष्ट्रमें इस दिन जानकी जन्म दिन मानकर उत्सव किया जाता है। जम्बूमें इसको जानक्यष्टमी कहते हैं। गुजरात और महाराष्ट्रमें कालाष्टमी भी कहते हैं और कालभैरवकी पूजा करते हैं। काश्मीरमें इसको "होरा इठं हेयत्" अर्थात् घरको साफ करनेका दिन कहते हैं। युक्तप्रान्तमें शीतलाष्टमी कहते हैं और शीतलापूजन कुमारिका भोजन आदि किया जाता है।

प्रति मासकी पूर्णिमा—इसमें सत्यनारायण व्रत किया जाता है, सत्य-नारायण विष्णुका व्रत, पूजा, कथा श्रवण, ब्राह्मण भोजन आदिकी विधि है। किसी कामनाकी पूर्तिके लिये प्रति पूर्णिमाको सत्यनारायण व्रत करनेका नियम है।

इन सब व्रतोंके सिवाय संक्रान्तिकृत्य और वारकृत्य नामसे कई एक व्रत किये जाते हैं। यथा—वैशाखमें महाविषुव संक्रान्ति, जेष्ठमें विष्णुपदी संक्रान्ति, श्रावणमें दक्षिणायन संक्रान्ति, माघमें उत्तरायण संक्रान्ति, चैत्रमें षडशीति संक्रान्ति इत्यादि। और वारकृत्यमें रविवारव्रत, सोमव्रत, मंगल चण्डीकी पूजारूपी मंगलव्रत, बुधवारका राजराजेश्वर व्रत, बृहस्पतिवारका नरसिंह त्रयोदशी व्रत इत्यादि।

इन सब व्रतोंका शास्त्रीय स्वरूप, व्रतकथा तथा व्रतविधान मूल ग्रन्थोंमें द्रष्टव्य है। यहांपर बाहुल्य भयसे नहीं दिया गया।

व्रतोंका वर्णन करके अब उनकी महिमा तथा उपकारिताके विषयमें विचार किया जाता है। विधिपूर्वक व्रतानुष्ठान होनेपर शरीर, मन, बुद्धि तीनोंका या आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक त्रिविध कल्याण अवश्य प्राप्त होता है, यही व्रतकी परम महिमा तथा उपकारिता है। अब इनकी विस्तारित व्याख्या की जाती है।

व्रतोंसे आधिभौतिक लाभ—लोभादि वृत्ति मनुष्योंमें स्वाभाविक होनेके कारण पाचन शक्तिसे अधिक भोजन मनुष्य प्रायः कर लेता है, वही अपच अन्न उपजता हुआ अनेक प्रकारकी व्याधियोंका घर बन जाता है। व्रतके पूर्व दिन, व्रतके बीचमें या एकादशी आदि व्रतोंमें जो उपवास, फलाहार, लघु आहार या आहार संयमकी विधियां हैं उनसे अनायास ही पाकयन्त्रको विश्राम मिल जाता है और अपक्व अन्न पचकर शरीरको स्वस्थ बना देता है।

अमावस्या, पूर्णिमा, त्रयोदशी आदि जिन तिथियोंमें व्रत प्रारम्भ करनेका प्रायः विधान है, उन तिथियोंमें ग्रहोंका आकर्षण पृथिवीके जीवजन्तुओंपर अधिक रहता है। इस कारण उन तिथियोंमें उपवास या लघु आहार शारीरिक स्वास्थ्यके लिये बहुत ही उपकारी होता है।

अनेक चिकित्साओंसे थककर अब पश्चिमियोंने शारीरिक नीरोगताके लिये उपवास चिकित्साकी ही सबसे अधिक महिमा बताई है। इस महिमाका स्वाभाविक अनुभव पूज्यपाद त्रिकालदर्शी, तत्त्वदर्शी महर्षियोंकी कृपासे व्रतोंमें यथेष्ट हो जाता है।

सभी खाद्य वस्तुओंमें स्वाभाविक लोभ होनेपर भी प्रकृति अनुसार किसी खास वस्तुमें मनुष्यका लोभ रहता है। उसी वस्तुके नित्य उपभोगसे 'घृताहुत वह्नि'की तरह लोभ उत्तरोत्तर बढ़कर स्थूल सूक्ष्म अनेक असुविधाओंको उत्पन्न कर देता है। व्रतके बहानेसे बीच बीचमें उस वस्तुका त्याग होने पर स्वतः ही लोभ घट जाता है, जिससे शारीरिक मानसिक दोनों ही लाभ है।

नियम ही धर्म है, अनियमित, उच्छृङ्खल स्वभावको जो शक्ति नियमित करे, उसका नाम धर्म है। मनुष्य अपने शारीरिक ऐन्द्रियिक मानसिक स्वभावोंको किसी नियम (Discipline) के भीतर डालकर ही उन्हें अपने वशमें ला सकता है। अनियमित स्वभाव उद्दाम बनकर बेलगाम घोड़ेकी तरह मनुष्यको विविधविपत्तिके खड्डेमें डाल देता है। व्रतकी विधियोंमें आहार-

विहारका ऐसा सुन्दर नियम रख दिया गया है कि उससे उद्दाम प्रवृत्तियां खुद व खुद काबुमें आजाती हैं और मनुष्योंको क्रमशः उन्नत बनाकर आध्यात्मिक पथमें सुप्रवृत्त कर देती हैं। यही व्रतकी नियमित जीवन (Disciplined life) बनाने वाली अपूर्व शक्ति है।

श्रीभगवान्ने गीतामें उपदेश किया है—

'विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः'।

आहार या आहरण न होनेसे विषय वृत्ति नष्ट होती है। अन्नके रससे इन्द्रियोंमें बलाधान होकर उनकी उत्तेजना होती है। पूर्णिमा, अमावस्या आदि खास खास तिथियोंमें चन्द्रादिग्रहों उपग्रहोंके आकर्षणसे इसका सञ्चार और भी अधिक हो जाता है जिससे ब्रह्मचर्यमें विकार या मनमें विकार होना सम्भव हो जाता है। व्रतकी उपवासविधि या स्वल्पाहार विधि द्वारा इन्द्रियोंमें रससञ्चार कम होता है, जिससे ब्रह्मचर्य रक्षा तथा मनःसंयममें विशेष सहायता मिलती है।

धर्मानुकूल शारीरिक व्यापारको आचार कहते हैं। आचारके शारीरिक व्यापारमें धर्म रहनेके कारण वह व्यापार नियमित रहता है, अनर्गल नहीं होने पाता है। ऐसा ही व्रतके अनुष्ठानमें भी खानपान, रहन सहन, आहार विहार सभी उद्योगमें नियम रहनेके कारण वह सर्वथा आचार विज्ञानके अनुकूल होता है और व्रती अनायास हो सदाचारी बनकर प्रथम धर्मके अनुष्ठान द्वारा अन्तिम धर्म तकके अधिकारको प्राप्त कर लेता है।

ऋतुके विचारसे खाद्यवस्तुओंका अदल बदल कर देनेपर स्वास्थ्य ठीक रहता है। ऋतुके विपरीत अन्न खानेसे मनुष्य बीमार हो जाता है। इस लिये जिस ऋतुमें जो व्रत है, उसमें आहारकी विधि भी ऋतु अनुकूल ही रक्खो गई है। जैसा कि चैत्रमासमें सम्वत्सर प्रतिपदाका व्रत होता है। चैत्रमास बसन्त ऋतु है, इसमें रक्त साफ न रहनेसे चेचक आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। आयुर्वेदशास्त्रमें जो वसन्तमें मधुका सेवन लिखा है, उसका भी यही कारण है। और यही कारण है कि सम्बत्सर प्रतिपदाव्रतमें रक्त शोधक नोम तथा मिश्रीका सेवन लिखा है। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतुमें किये जानेवाले अक्षय तृतीया व्रतमें ठण्डा ओलेका पानी, दही आदि खाने खिलानेकी विधि है। दो महीने वर्षाके और दो महीने शरत्के स्वास्थ्यके लिये बहुत ही

हानिकर हैं। 'जीवेत् शरदः शतम्' सौ शरत्-ऋतु जीवे ऐसा कहकर वेदने भी शरत् कालमें जीनेको ही जीना कहा है, क्योंकि इसीमें मरनेकी आशंका विशेष रहती है। इसी कारण फलाहार आदि करके इन चार महीनोंमें चातुर्मास्य व्रत बताया गया है। शरत्में पित्तका प्रकोप और वर्षातमें वात, पित्त, कफ तीनोंका प्रकोप रहता है। इस लिये इन महीनोंके विषयमें लिखा है—

श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा।
दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत्॥

श्रावणमें शाक, भादोंमें दही, आश्विनमें दूध और कार्त्तिकमें दाल न खानी चाहिये। जो मनुष्य इन महीनोंमें जौ और चावल मात्र खाकर रहता वह पुत्रपौत्रको प्राप्त करता है और जो शाकान्न नहीं खाता है वह विष्णुभक्त होता है। रात्रिके भोजन त्यागमें स्वर्गको जाता है, परान्न भोजन न करनेसे देवता बनता है, चान्द्रायणसे शिवलोकको पाता है और दूध मात्र पीकर रहनेसे कुलका उच्छेद नहीं होता। जो मनुष्य चातुर्मास्यमें सब प्रकारके तेल-फुलेलोंको त्यागता, नख-रोम नहीं कटाता, बेगन, कोहड़ा, गाजर, मसूर, मूली, करोंदा आदि पदार्थोंको नहीं खाता, वह स्वर्गसुख लाभ करता है। इत्यादि कितने ही प्रकारसे इन चार महीनोंमें भोजनमें संयम करना बताया गया है। इसी प्रकार मकरसंक्रान्ति व्रतके विषयमें भी लिखा है—

माघे मासि महादेव! यः कुर्याद्व घृतकम्बलम्।
स भुक्त्वा सकलान् भोगानन्ते मोक्षं च विन्दति॥

पौष और माघ मासमें घृत तथा कम्बल दान करनेसे भोग मोक्षकी प्राप्ति होती है। शीतकालमें शीतनिवारणार्थ कम्बलकी आवश्यकता होती ही है और शीतकालमें परिपाक शक्ति बढ़ जानेसे घृत भोजन भी लाभदायक होता है। अतः इसका दान तथा भोजन व्रतमें बिहित हुआ है। इसके सिवाय मकरसंक्रान्तिमें गङ्गास्नान और माघमासमें गङ्गा तटपर कल्पवासकी बहुत ही महिमा बताई गई है। क्योंकि शीतकालका गङ्गाजल ही असल गङ्गाजल है। उसमें वर्षात्का खराब जल तथा ग्रीष्मका वर्फ जल मिला हुआ नहीं रहता है। इस कारण इन दिनों गङ्गास्नान, गङ्गाजलपान, गङ्गातीरवास तथा गङ्गाके वायु सेवनसे शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा सभीको विशेष लाभ पहुंचता

है। इस प्रकारसे व्रतोंके अनुष्ठान द्वारा मनुष्योंको असीम आधिभौतिक उपकार प्राप्त होता है। अतःपर व्रतोंसे आधिदैविक लाभके विषयमें विचार किया जाता है।

व्रतोंसे आधिदैविक लाभ—नित्य नैमित्तिक काम्य सभी व्रतोंमें ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मनका संयम तथा विविधप्रकार तपस्याओंका विधान है। यह बात पहिले ही कही गई है कि समस्त संयम या तप निष्काम भावसे अनुष्ठित होनेपर आत्मोन्नतिका कारण बनता है और सकाम भावसे अनुष्ठित होनेपर विविध विभूतिओंको प्रदान करता है। आखोंके संयम करनेवाले दिव्यनेत्र बनते हैं, वाक्‌संयमी वाक्‌सिद्ध या सुवक्ता बनते हैं, लोभके संयमसे परलोक या पर जन्ममें धनियोंके कुलमें उत्पत्ति तथा उपादेय द्रव्योंकी प्राप्ति होती है, कामेन्द्रियके संयमसे दिव्यलोकविहारिणी दिव्यस्त्रियां मिलती हैं और पर जन्ममें भी स्त्रीभाग्य अच्छा होता है। इत्यादि इत्यादि सब व्रतोंमें विहित सकाम तपस्याओंके फल हैं।

संसारमें जितने प्रकारकी दैवी विभूतियां देखी जाती हैं, सभी तपस्याओंके फलसे उपलब्ध हैं, इस विषयमें आर्यशास्त्रमें भूरि भूरि प्रमाण मिलते हैं। मनुसंहितामें लिखा है—

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलाऽनिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥
औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः ।
तपसैव प्रसिध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥
यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्वन्तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥
कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च ।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥
तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ।
इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान् सम्वर्द्धयन्ति च ॥
प्रजापतिरिदं सर्वं तपसैवाऽसृजत् प्रभुः ।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥

फलमूल वायुभोजी संयतात्मा ऋषिगण तपस्याके ही बलसे त्रिभुवनका दर्शन करते हैं। अनेक प्रकारकी दिव्य औषधियां, चिकित्सा विद्या, दैवी-विभूतियां—तपस्याके बलसे ही प्राप्त होती हैं। जो कुछ दुस्तर, दुष्प्राप्य, दुर्लभ या दुष्कर है, तपस्याके द्वारा ही ये सब सिद्ध होते हैं। कीट, सर्प, पतङ्ग, पशु, पक्षी, स्थावर जीवगण तपस्याके बलसे स्वर्गतक पहुँच सकते हैं। देवतागण तपः पवित्र ब्राह्मणोंका ही यज्ञभाग ग्रहण तथा उन्हें ईप्सित फलदान करते हैं। प्रजापति ब्रह्माने तपोबलसे ही सृष्टि की थी और महर्षियोंने तपोबलके द्वारा ही वेद प्राप्त किया था। और भी महाभारतमें—

आदित्या वसवो रुद्रास्तथैवाग्न्यश्विमारुताः।
विश्वेदेवास्तथा साध्याः पितरोऽथ मरुद्गणाः॥
यक्षराक्षसगन्धर्वाः सिद्धाश्चान्ये दिवौकसः।
संसिद्धास्तपसा तात ये चान्ये स्वर्गवासिनः॥
मर्त्यलोके च राजानो ये चान्ये गृहमेधिनः।
महाकुलेषु दृश्यन्ते तत्सर्वं तपसः फलम्॥
कौशिकानि च वस्त्राणि शुभान्याभरणानि च।
वाहनासनपानानि तत्सर्वं तपसः फलम्॥

आदित्य, वसु, रुद्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, वायु, विश्वेदेवा, साध्य, पितृ, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, अन्यान्य देवतागण तथा स्वर्गवासिगण—इन सबको तपस्याके द्वारा ही दिव्यलोक, दिव्यविभूति तथा दिव्यसुख प्राप्त हुए हैं। इस मर्त्यलोकमें भी तपस्याके ही बलसे बड़े बड़े राजे महाराजे होते हैं और उच्च धनियोंके कुलमें जन्मलाभ होता है। सुन्दर वस्त्र, अलंकार, हाथी, घोड़े, उत्तम खान पान सभी कुछ तपोबलसे ही प्राप्त होते हैं। नित्य नैमित्तिक काम्य तीनों व्रतोंमें ही दैवीविभूति प्रदानकारी ऐसे अनेक तपोंके विधान देखनेमें आते हैं।

प्रत्येक व्रतमें कुछ न कुछ देवोपासना अवश्य विहित है। कहीं विष्णु-पूजा, कहीं शिवपूजा, कहीं देवीपूजा, कहीं लक्ष्मीपूजा, कहीं गणपतिपूजा इस तरह कई एक पूजाओंका विधान व्रतमें किया गया है। देवपूजा सकाम या निष्काम हो, विधिपूर्वक होनेसे अधिदैवलाभ बहुत कुछ होता है, इसमें कोई

भी सन्देह नहीं है। इष्टकी प्रसन्नतासे आधिभौतिक धन-सुखादि प्राप्तिके साथ साथ अधिदैवसिद्धियां भी बहुत कुछ मिलती हैं। इष्टमें तन्मयता द्वारा उनकी सर्वशक्तिमत्ताका अंश साधकको अवश्य ही मिल जाता है। उनके दिव्य गुणोंका भी प्रभाव साधकको अति उच्च कोटिका महात्मा बना देता है। भक्त साधक इष्टदेवके शक्तिसागरमें अवगाहन स्नान करता हुआ शरीर, मन, प्राण, आत्मा सभीको आप्यायित तथा भरपूर बना लेता है। यही सब व्रतोंसे आधिदैविक लाभ है।

व्रतोंसे आध्यात्मिक लाभ—व्रताङ्गमें जिन अनुष्ठानोंका विधान है, उनसे आत्माका प्रचुर कल्याण होता है, इसमें सन्देह ही क्या है? बहिरिन्द्रियोंका संयम, अन्तरिन्द्रियोंका संयम, यम-नियम-ब्रह्मचर्य-सदाचार-सात्त्विक आहार-विहार—यह सब व्रतका प्राण है, इनके पालन किये विना व्रतमें सफलता कभी हो ही नहीं सकती। और यही सब अनुष्ठान आध्यात्मिक उन्नतिका भी मूल-मन्त्र है। उपनिषद्में लिखा है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

सत्य, तप, ब्रह्मचर्य आदिके द्वारा आत्मोपलब्धिका पथ निष्कण्टक हो जाता है। व्रतकालमें मिथ्या बोलना निषेध है, ब्रह्मचर्यरक्षा विहित है, उपवास, फलाहार आदि द्वारा शारीरिक तपस्या, मौन रहकर वाचनिक तपस्या, मनोवृत्तिनिरोधरूप मानसिक तपस्या इत्यादि सभी कुछ करना होता है, जिससे व्रतपूर्त्ति द्वारा व्रतीकी आध्यात्मिक स्थिति बहुत ही सराहनीय हो जाती है।

उपनिषद्में लिखा है—

तपसा कल्मषं हन्ति, विद्ययामृतमश्नुते।

जिस प्रकार सोनेका मल उसे तपानेपर निकल जाता है, ऐसा ही तपस्याके द्वारा शरीर-मनको तपानेपर वे निष्पाप निर्मल बन जाते हैं। ऐसे निर्मल अन्तःकरणमें ही आत्मिक ज्ञान ठहर सकता है। नित्य नैमित्तिक काम्य तीनों व्रतोंमें ही प्रायश्चित्त आदि कितने ही शरीर-मन तपानेके विधान महर्षियोंने किये हैं, जिनके द्वारा अन्तःकरण निर्मल होकर आत्माभास ग्रहणके योग्य हो जाता है।

आहार निवृत्तिसे विषय निवृत्ति होती है, भगवद्गीताका यह प्रमाण पहिले ही दिया जा चुका है। विषय निवृत्ति ही मुक्तिका द्वार है। 'वन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः' विषयासक्त मन वन्धनका और विषयशून्य मन मोक्षका कारण है। व्रतोंमें निराहार, स्वल्पाहारका विशेष विधान है। अतः व्रतोंमें आहारनिवृत्ति द्वारा विषयनिवृत्ति करके मुक्तिपथ प्रशस्त करनेके उपाय वताये गये हैं, यही सिद्ध हुआ।

आहारनिवृत्ति एकबारगी न हो, किन्तु आहारशुद्धि हो या युक्ताहार हो, उसमें भी योगपथ प्रशस्त तथा आत्मोन्नतिका मार्ग सरल हो जाता है। युक्ताहार युक्तविहार पुरुषका योग दुःखनाशक तथा आत्मोन्नतिप्रद होता है, इसका उपदेश श्रीभगवान्ने गीतामें किया है। श्रुतिमें लिखा है—"आहार-शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिस्ततो ग्रन्थिप्रमोक्षः"। शुद्ध आहारसे सात्त्विक शक्ति बढ़ती है और उससे आत्मस्मृति प्रबुद्ध होकर मायाकी ग्रन्थिसे जीवका छुटकारा हो जाता है। व्रतोंमें आहारशुद्धि तथा युक्ताहारका विशेष विधान रहता है। निरामिष सात्त्विक द्रव्योंका सेवन, राजसिक तामसिक वस्तुओंका वर्जन, नियमित भोजन—ये सभी शरीर, मन, बुद्धिको शुद्ध सात्त्विक तथा आत्मोपलब्धिके योग्य बना दिया करते हैं, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है।

एकाग्र चित्तसे इष्ट ध्यान तथा इष्टजप करना प्रत्येक व्रतमें विशेषरूपसे विहित है। 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' 'ध्यानात् प्रत्यक्षमात्मनः' इष्टमें चित्तके एकतान हो जानेका नाम ध्यान है। उससे आत्मा प्रत्यक्ष हो जाता है। ध्यानके द्वारा ध्येयमें चित्त निविष्ट होता है। अनुराग तथा प्रेमभक्ति-पूर्वक निविष्टचित्तसे ध्येय देवका ध्यान करते करते देवताका दर्शन होता है। यथा श्रीमद्भागवतमें—

पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि
साकं वाचं स्पृहणीयां गृणन्ति ॥

इष्टध्यानपरायण व्रती ध्यानके परिपाकमें इष्टदेवकी मधुर मूर्त्तिके दर्शन करते हैं और उनसे बोलते तथा वरदान मांगते हैं। और भी—

तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्विषः
स्वस्थामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ।

इष्टदेवके दर्शनसे समस्त पाप कट जाता है और अन्तःकरण निर्मल होकर स्वरूपमें स्थित हो जाता है। इस प्रकारसे व्रतविहित इष्ट ध्यान द्वारा इष्टदर्शन तथा आध्यात्मिक लाभ अवश्यम्भावी है। ध्यानकी तरह जपके द्वारा भी विशेष फललाभ तथा आध्यात्मिक उन्नति लाभ होता है गीतामें 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' कहकर श्रीभगवान्ने जपकी भी विशेष महिमा बता दी है। 'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः' इस सूत्रके द्वारा महर्षि पतञ्जलिने यही कहा है कि प्रणवादि जपसे भगवद्दर्शन होते हैं। 'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः' जपसे निश्चित ही सिद्धि मिलती है यह योगशास्त्रका वचन है। मन्त्रके साथ देवताका वाच्यवाचक सम्बन्ध रहता है, मन्त्र देवताका दिव्य नाम है। 'तस्य वाचकः प्रणवः' इस सूत्रके द्वारा महर्षि पतञ्जलिने इसी विज्ञानको बताया है। जिस प्रकार नाम लेकर पुकारनेपर मनुष्य उत्तर देता है, ऐसे ही दिव्यनाम-मन्त्रका जप करनेपर इष्टदेव प्रसन्न होकर उत्तर देते हैं, दर्शन देते हैं। यही नाम जप, मन्त्रजपका फल है। व्रतमें जप, पुरश्चरण आदि कितनी ही क्रियाएं बताई गई हैं, जिनके विधिपूर्वक अनुष्ठानसे अभीष्ट फल लाभ, इष्टदर्शन और यथेष्ट आध्यात्मिक लाभ होता है।

ध्यानके अन्तमें ध्याता ध्येयकी एकता और जपके परिणाममें मन्त्र-देवताकी एकता होनेपर समाधि हो जाती है। इसके विषयमें उपनिषद्में लिखा है—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं यदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

समाधिमें अन्तःकरण परमात्मामें विलीन हो जानेपर आनन्दमय आत्माका निरतिशय, असीम आनन्द मिलने लगता है। वह आनन्द शब्दसे वर्णन करने योग्य नहीं है।

'सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्'
'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः'

वह असीम आनन्द इन्द्रियोंसे अतीत, योगबुद्धिसे अनुभव करने योग्य

है। इसके पानेसे सांसारिक कोई भी वस्तु इससे अधिक उत्तम नहीं मालूम पड़ती है। यही मनुष्यजन्मका अन्तिम सर्वोत्तम प्राप्तव्य वस्तु है। व्रतके आध्यात्मिक लाभमें उपासनापरायण व्रतीको यही अनोखा लाभ मिलता है। इस प्रकारसे व्रतानुष्ठान द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक त्रिविध कल्याण प्राप्त होते हैं।

ऊपर वर्णित त्रिविध कल्याणके अतिरिक्त, व्रतोंसे बहुत कुछ शिक्षा भी मिलती है।

चैत्रमासमें अरुन्धती व्रत करनेवाली स्त्री जब स्कन्दपुराणोक्त इस व्रतकी कथा सुनने लगती है तो पार्वतीके प्रति पशुपतिनाथके निम्नलिखित उपदेशात्मक श्लोक भी उन्हें सुननेमें आते हैं, यथा—

यः स्वनारीं परित्यज्य निर्दोषां कुलसम्भवाम् ।
परदाररतो वा स्यादन्यां वा कुरुते स्त्रियम् ॥
सोऽन्यजन्मनि देवेशि! स्त्री भूत्वा विधवा भवेत् ।
या नारी तु पतिं त्यक्त्वा मनोवाक् कायकर्मभिः ॥
रहः करोति वै जारं गत्वा वा पुरुषान्तरम् ।
तेन कर्मविपाकेन सा नारी विधवा भवेत् ॥

निर्दोषा, कुलीन, अपनी सती स्त्रीको छोड़कर जो परस्त्रीमें रत हो जाता है या परस्त्रीको अपने घरमें डाल लेता है उसको इस पापसे परजन्ममें स्त्रीजन्म तथा बालवैधव्य मिलता है। इसी प्रकार जो स्त्री अपने पतिको छोड़कर एकान्तमें परपुरुषके साथ व्यभिचार करती है, उसको भी आगे जन्ममें बालवैधव्य प्राप्त होता है। स्त्रीपुरुष दोनोंके सच्चरित्र बने रहनेके लिये इस व्रतमें कैसी उत्तम शिक्षा दी गई है सो पाठक मात्र ही समझेंगे।

ज्येष्ठमासमें अनुष्ठानयोग्य वटसावित्री व्रतमें जहांपर सत्यवान्को अल्पायु जानकर अश्वपति अपनी पुत्री सावित्रीसे कहते हैं कि "अन्य किसीको पतिरूपसे वरण करो" उस समय सावित्री उत्तर देती है—

नान्यमिच्छाम्यहं तात! मनसाऽपि वरं प्रभो ।
यो मया च वृतो भर्त्ता स मे नान्यो भविष्यति ॥

पतिं मत्वा न मे बुद्धिर्विचलेच्च कथंचन ।
सगुणो निर्गुणो वापि मूर्खः पण्डित एव वा ॥
दीर्घायुरथ चाल्पायुः स वै भर्त्ता मम प्रभो !
नान्यं वृणोमिभर्त्तारं यदि वा स्याच्छचीपतिः ॥

पिताजी, मैं मनसे भी अन्य पुरुषको वरण नहीं कर सकती, जिनको एक बार पति रूपसे वरण किया, वे ही सदाके लिये पति रहेंगे। सत्यवान्को अल्पायु जानकर मेरी बुद्धि विचलित नहीं होती। वे गुणवान् या गुणहीन हों, मूर्ख या पण्डित हों, दीर्घायु या अल्पायु हों, मेरे पति वे हो चुके हैं, यदि साक्षात् इन्द्र भी पति रूपसे आवें मैं उन्हें वरण नहीं करती। इन शब्दोंमें पातिव्रत्यकी कितनी महिमा और सती स्त्रीका कितना तेज तथा अमोघ सत्य संकल्प भरा हुआ है सो विचारवान् व्यक्तिमात्र ही समझ सकता है।

विपत्तिके समय पतिव्रता स्त्रीको किस तरह पतिका साथ देना चाहिये इसका ज्वलन्त दृष्टान्त सावित्री देवीने अपने चरित्र द्वारा संसारको दिखा दिया है। सत्यवान्की मृत्यु एक वर्षके बाद होगी ऐसा जानकर भी सावित्रीने उन्हें नहीं छोड़ा, किन्तु अपनी तपस्याके बलसे मृत पतिको भी जीवित करा लिया। केवल इतना ही नहीं, सुशीला स्त्रीका कर्त्तव्य जो श्वशुरकुल, पितृकुल दोनोंकी भलाई करनी है, सो भी सावित्री देवीने पूरा कर दिया। यमराजको सन्तुष्ट करके पहिले अपने श्वशुर द्युमत्सेनको खोया हुआ राज्य दिला दिया तदनन्तर अपने अपत्यहीन पिताको पुत्र दिला दिया और अन्तमें अपना उद्देश्य पूरा किया। यह सभी गृहस्थ नरनारियोंके लिये आदर्श शिक्षा-प्रद दृष्टान्त है।

श्रावण मासमें नागपंचमीके दिन जो सर्प तक्की पूजा आर्यशास्त्रमें लिखी हुई है उससे क्या यह शिक्षा नहीं मिलती है, कि आर्यजाति शत्रु-मित्रका भेद न विचार करके केवलभ गवान्की विभूतिविचारसे सकल जीवोंमें भगवत् शक्तिकी उपासना करनेवाली है। सर्प मनुष्यका शत्रु है, क्षणमें ही प्राणनाश करने वाला है, किन्तु नाशकी विभूति, श्रीभगवान्की रुद्रशक्ति उसमें प्रचण्ड रूपसे भरी हुई है, इस कारण रुद्र पूजाकी तरह सर्प पूजा भी साम्यबुद्धिसे अवश्य कर्त्तव्य है।

मित्रकी आदर, अभ्यर्थना संसारमें सभी करते हैं, किन्तु शत्रुमें यदि

गुण हों तो उसकी भी पूजा करनी चाहिये यही महान् उपदेश नागपञ्चमी व्रतसे प्राप्त होता है।

परमात्मा घटघटमें विराजमान हैं ऐसा जानकर सभीसे प्रीति करनी चाहिये यह उपदेश आर्यशास्त्रमें कितने ही स्थानोंमें दिया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा॥

सकल भूतोंमें जीवात्मारूपसे श्रीभगवान् बसे हुए हैं, इसलिये मित्र दृष्टिसे सबसे प्रेम तथा सबका मान करना चाहिये। श्रावण महीनेमें जो 'रक्षाबन्धन' त्योहार आता है उसमें इस विज्ञानकी अच्छी स्मृति दिलाई जाती है। क्योंकि विज्ञान जबतक मनुष्य जीवनमें कार्य रूपमें प्रकट नहीं होता, तबतक उसकी पूरी उपयोगिता सिद्ध नहीं होती। यही कारण है कि श्रावणशुक्ल पूर्णिमाके दिन भाई बहिन, मित्र मित्र, छोटे बड़े भाई परस्परके हाथमें राखी बांधकर हार्दिक मेल तथा प्रेमका परिचय प्रदान करते हैं। और इसका फल भविष्योत्तरपुराणमें यही लिखा है कि—

'इन्द्राण्या यत् कृतं पूर्वं शक्रस्य जयवृद्धये।'

इन्द्रकी राज्यलक्ष्मी जब असुरोंके हाथमें चली गई थी तो इन्द्राणीने रक्षाबन्धन द्वारा ही उसे पुनः प्राप्त कर ली थी। वास्तवमें भाई भाई, स्वजन कुटुम्बोंकी एकता ही राज्यलक्ष्मीको लाती है और भ्रातृविरोध ही राज्यलक्ष्मीको विदेशियोंके हाथमें डाल देता है। यही शिक्षा रक्षाबन्धन पर्वसे हमें प्राप्त होती है।

भगवान् अपने भक्तके लिये क्या कुछ नहीं करते इसका ज्वलन्त प्रमाण नृसिंहचतुर्दशी व्रतसे प्राप्त होता है। भगवान्ने भक्तशिरोमणि प्रह्लादके लिये षण्डामार्कका बेत खाया, प्राण नाशकारी हलाहल पान किया, अग्नि प्रवेश किया, समुद्र प्रवेश किया, सर्पदंशन दुःख देखा, करिकर निपीड़न प्राप्त किया। अन्तमें—

सत्यं विधातुं निजभक्तभाषितं।
व्याप्तिञ्च तेष्वखिलेषु चात्मनः॥

निराकार होने पर भी भक्त वचनको ही सत्य करनेके लिये अद्भुत नृसिंहरूप धारण कर लिया।

मनुष्य या राजा चाहे कितना ही प्रतापी क्यों न हो, यदि वह अत्याचारी, प्रजापीड़क, भगवन्नामनाशक, पापपरायण, सज्जनोंको दुःख देनेवाला हो जाय तो उसका नाश अवश्यम्भावी है। हिरण्यकशिपु कितना बड़ा प्रतापी था, दैव वरसे अजेय-अमर था, किन्तु पापका गुरुभार पूर्ण हो जानेपर समस्त प्रताप मिट्टीमें मिल गया और नखसे फाड़ कर मार दिया गया। इस कारण संसारमें शक्तिका मद नाशका ही कारण होता है। यह भी शिक्षा इस व्रतसे मिलती है।

श्रीभगवान्‌को धार्मिक सत्याग्रह बड़ा प्रिय है—चाहे अत्याचारी पिता क्यों न हो, मातुल क्यों न हो, भाई क्यों न हो, राजा क्यों न हो, उसके विरुद्ध कोई धार्मिक पुरुष यदि सत्याग्रह करे और दुर्बल, असहाय, निरस्त्र होनेपर भी अपने सत्यसंकल्पपर डटे रहे तो संसारमें ऐसी कोई शक्ति नहीं है, कि उस सत्यपथारूढ़ पुरुषका नाश कर सके, क्योंकि उसके सहायक भगवान् होते हैं। प्रह्लादकी भी ऐसी रक्षा श्रीभगवान्‌ने की, विभीषण तथा वसुदेव देवकीकी ऐसी रक्षा भी श्रीभगवान्‌ने की। यह अत्युत्तम शिक्षा नृसिंहचतुर्दशीव्रतमें प्राप्त होती है।

चाहे वंशमें कितने ही पापी जीव क्यों न उत्पन्न हो जायं, यदि एक भी भगवद्भक्त महात्मा उत्पन्न हो तो इक्कीस पिढ़ी तक सबके सब तर जाते हैं, यह भी रहस्य इस व्रतसे जाना जाता है। क्योंकि नृसिंह भगवान्‌ने प्रह्लादके वर मांगनेपर उनके पापी पिताके उद्धारके विषयमें यही उत्तर दिया था।

कितने ही दृष्टान्त दिये जायं, ऐसी अनन्त शिक्षायें व्रतोंसे प्राप्त होती हैं।

कालके प्रतापसे हिन्दुव्रतोंके साथ कहीं कहीं अनेक प्रकारकी कुरीतियां मिला दी गई हैं और कहीं कहीं व्रतोंके नामसे अनेक प्रकारके कदाचार, अनाचार, अत्याचार भी हुआ करते हैं। दृष्टान्तरूपसे दो चार त्योहारोंका वर्णन किया जाता है। होलिकोत्सवके विषयमें नारदीयपुराणमें लिखा है—

फाल्गुने पौर्णिमायान्तु होलिकापूजनं स्मृतम्।
संचयं सर्वकाष्ठानां पलालानां च कारयेत्॥

फाल्गुनमासकी पूर्णिमामें होलिका पूजन होता है, उसमें लकड़ी तथा घास फूसका एक ढेर लगा कर रक्षोघ्न वेद मन्त्रोंसे हवन करनेकी विधि है। वेदमन्त्र यथा—

ॐ रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमह वलगमुत्किरामि स्वाहा। इत्यादि मन्त्रोंसे हवन करके पश्चात् होलिका पूजनकी विधि है। इसका मन्त्र यथा—

अहकूटाभयत्रस्तैः कृता त्वं होलिं बालिशैः।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूति–भूतिप्रदायिनीम्॥

हे होलि! अहकूटा राक्षसीके भयसे भीत बालकोंने उसके मारनेके लिये तुम्हारी प्रतिष्ठा की है, इसलिये मैं तुम्हारी पूजा करता हूं। तुम्हारा भस्म मुझे ऐश्वर्यप्रदान करे। इसके सिवाय दोलोत्सवके विषयमें भी ब्रह्मपुराणमें लिखा है—

नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्।
फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत्॥

फाल्गुन पूर्णिमाके दिन पुरुषोत्तम गोविन्दको हिण्डोलेमें झूलते देखनेसे विष्णुलोक प्राप्ति होती है। होलीके सम्बन्धसे वङ्गदेशमें यह भी उत्सव होता है जिसको दोलोत्सव कहते हैं। भविष्यपुराणमें महाराजा युधिष्ठिरसे देवर्षि नारदने कहा है—

अथ पंचदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप।
अभयं चैव लोकानां दीयतां परमेश्वर॥
यथा ह्यशंकिनो लोका रमन्ति च हसन्ति च।
दारुजानि च खंडानि गृहीत्वा तु समुत्सुकाः॥
योधा इव विनिर्यान्तु शिशवः संप्रहर्षिताः।
संचयं शुष्ककाष्ठानामुपलानां च संचयम्॥
तत्राग्निं विधिवद्धुत्वा महामन्त्रैश्च वित्तमैः।
ततः किलकिलाशब्दैस्तालशब्दैर्मनोहरैः॥
तेन शब्देन सा पापा होमेन च समाकृता।
सर्वदुष्टापहो होमः सर्वरोगोपशान्तये॥

क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा होलिका स्मृता ॥

हे राजन्! फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमाको सब मनुष्योंके लिये अभयदान देना चाहिये, जिससे निःशंक हो लोग हंसें और खेलें। लकड़ीके टुकड़ोंको लेकर वीरोंकी तरह लड़के सब गांवसे बाहर जायं और लकड़ी-कण्डे आदिका ढेर लगाकर विधिवत् हवन करें। वह पापिनी ढुण्ढा राक्षसी मन्त्र, हवन, किलकिला शब्द तथा ताली बजानेसे नष्ट हो जाती है। होम ही सकल प्रकारका दोष तथा रोगनाशक है। इसी कारण इसको होलिका कहते हैं। पूर्वकी ओरके कुछ लोग इसको कृष्णसम्बन्धी त्यौहार मानते हैं और होलिका पूतना राक्षसी है,-ऐसा कहते हैं। राजपुतानेके कुछ लोग हिरण्यकशिपुकी भगिनी और प्रह्लादकी घटनासे सम्बन्ध मानते है। प्रह्लादको मारनेके लिये हिरण्यकशिपुकी भगिनी उन्हें अग्निमें लेकर बैठी, किन्तु भगवद्भक्त प्रह्लादके प्रतापसे वह स्वयं जल गई, प्रह्लादको कुछ न हुआ। दक्षिणके लोग इसे कामदहनका स्मारक मानते हैं। देवादिदेव महादेवने जिस तृतीय नेत्रकी अग्निसे मदनको मार दिया था, उसी अग्निको होलिकाग्नि मानकर उत्सव करते हैं।

इस प्रकारसे होली त्यौहारमें अग्न्युत्सव करना, हास्यगीत आदि करना रंग-गुलाल आदि सभ्यताके साथ खेलते रहना यह सब तो शास्त्रमें लिखा है। किन्तु होलीके नामसे कहीं कहीं स्त्री-पुरुष निर्लज्ज होकर जो बीभत्स रसके गाने गाते रहते हैं, फोस दिल्लगी-करते रहते हैं, भांग, अफीम, गांजा तथा शराब पीकर उन्मत्त होते रहते हैं, साल भरके नारदानोंकी गन्दगीको लेकर मनुष्योंपर फेंकते हैं, रास्ता चलते आदमियोंका मुह काला कर देते हैं—ये सब बहुत ही अनाचार, अत्याचार हैं, इनको त्याग देना चाहिये।

दूसरा त्यौहार दीपावलीका है, जिसमें यह कुरीति फैली हुई है, कि छोटे-बड़े सब लोग जुएमें मत्त हो जाते हैं और इसीसे कितने ही झगड़े, भाई-भाईमें विरोध, सर्वनाश, मुकद्दमे आदि उत्पन्न होते हैं। यह भी सर्वथा त्यागने योग्य है।

तीसरा त्यौहार गणेश चतुर्थीका है। इसको किसी किसी प्रदेशमें 'पथरा चौथ' कहते हैं और इसके नामसे रात्रिके समय एक दूसरेके मकानपर पत्थर फेंकते हैं। यह बड़ी कुप्रथा है, इसमें सिर फूट जाते हैं, बुरी तरह चोट लगती है, आपसमें कलह बढ़ता है। अतः सर्वथा त्यागने योग्य है।

इसी प्रकार शिवरात्रि व्रतके समय प्रायः लोग भांग बहुत पीकरके नशामें उन्मत्त हो जाते हैं और कहीं कहीं इससे भी उग्र नशेकी वस्तुओंका सेवन करते हैं, यह बहुत ही खराब रीति है। देवादिदेव महादेव समुद्रोत्पन्न विष पान कर नीलकण्ठ हो गये थे, उनपर विषका असर नहीं हुआ था। मनुष्यमें वह शक्ति तो नहीं है, केवल भांग पीकर पागलपन करनेकी और पूजा विगाड़नेकी शक्ति यह कितनी अफ़सोसकी बात है। इसी तरह आश्विनमें विजया-दशमीके दिन भी बङ्गालके लोग प्रायः बहुत भांग पी जाते हैं और इससे कहीं कहीं अनर्थ उत्पन्न हो जाता है। इस निन्दनीय प्रथाको भी त्याग देना चाहिये। ये ही सब अज्ञानसे उत्पन्न व्रतसम्बन्धीय कुरीति तथा अनाचारोंके दृष्टान्त हैं।

व्रतके विषयमें वर्णन करके अब उत्सवके विषयमें कुछ विचार किया जाता है। व्रत संयमप्रधान और उत्सव आनन्दप्रधान है। क्योंकि संयमका फल आनन्द है। इसी कारण प्रत्येक व्रतके अन्तमें उत्सव करनेकी विधि है।

संयम प्रकृतिका स्वाभाविक धर्म और उत्सव भी प्रकृतिका स्वाभाविक धर्म है। शीत ऋतुमें प्रकृतिका संयम और वसन्त ऋतुमें प्रकृतिका उत्सव है। ग्रीष्म ऋतुमें प्रकृतिका संयम और वर्षाऋतुमें प्रकृतिका उत्सव है। यदि शीतऋतुमें प्रकृतिके समस्त अवयवमें इतना संकोच नहीं होता, तो वसन्तमें इतना विकाश नहीं हो सकता। सर्वत्र पुष्पराशिकी लहरी-लीला, विविधराग रञ्जित-कुसुमसुषमामण्डित-नवकिशलयसुशोभित तरुवरोंकी विचित्रता, शत-दल-सहस्रदल कमलसुगन्धित स्वच्छ मनोरम सरोवरोंकी तरङ्गभङ्गमयी उन्मत्तता, मधुपानपुष्ट प्रमत्त मधुकरोंकी गुञ्जारभरी उत्फुल्लता, सुधाकर सुधाधार सिञ्चित दिव्यज्योत्स्नामयी वासन्ती रजनीकी रमणीयता नयनमन प्राणको पागल नहीं कर सकती। यदि ग्रीष्मऋतुमें प्रचण्डमार्तण्डके कर्कश किरणोंसे पृथिवी इतनी जल भुन न जाती तो वर्षा ऋतुकी घर घर धारामयी हरी भरी हरियाली कदापि नजर नहीं आती और न मधुर गंभीर नवजलधर ध्वनिश्रवणोन्मत्त परम सुन्दर मयूरोंका सुमधुर सुदर्शन नृत्य नयनगोचर होता। इसी लिये संयमके साथ उत्सव भी सदासे ही होता आया है। यही कारण है कि प्रत्येक व्रतके अन्तमें उत्सव किया जाता है।

संसारकी सभी जातियां अपनी अपनी आध्यात्मिक स्थितिके अनुसार व्रत तथा उत्सव किया करती हैं। ईसाइयोंमें व्रतको फास्ट (Fast) और

उत्सवको फीष्ट् (Feast) कहते हैं। इष्टर, क्रिशमस् आदि त्यौहारोंमें वे ऐसा ही करते हैं। मुसलमानोंमें रमजान आदि व्रत रखना और उसके बाद उत्सव करना प्रचलित है। किन्तु इनके प्रायः मृत्यूत्सव होते हैं, जन्मोत्सव नहीं होते हैं। वास्तवमें मृत्युमें कोई उत्सव नहीं हो सकता है, शोकप्रकाश ही हो सकता है, उत्सवं आनन्दका सूचक है, शोकका नहीं। इसी कारण आर्यशास्त्रमें जन्मोत्सव, विजयोत्सव आदि उत्सव होते हैं, मृत्यूत्सव आदि कार्य अवैज्ञानिक, अनार्य जाति सुलभ है।

व्रतके साथ उत्सवका सम्बन्ध रहनेसे जिस प्रकारका व्रत है, उत्सव भी उसी प्रकारका होता है। मानस व्रतमें मानसिक उत्सव, अन्तःकरणमें आत्मप्रसादजन्य आनन्दका विकाश है। कायिक व्रतमें दैहिक उल्लास नृत्यादि है। वाचनिक व्रतमें वाचनिक उल्लास संगीतादि है। जिस अवयवका व्रतमें संयम है, उसी अवयवका उत्सवमें उल्लास है। मनःसंयमसे, मानसिक व्रत द्वारा अन्तःकरणको अन्तर्मुखीन करनेसे आत्मसुधाकरकी आनन्दरश्मि अन्तःकरणपर प्रतिफलित होती है और संयमी व्रतीको ब्रह्मानन्दका आस्वादन मिलता है। यथा गीतामें—

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ (६ अ०)
बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमध्यात्ममश्नुते॥ (५ अ०)

मनको विषयसे हटाकर आत्मामें ठहरावे, और कुछ भी चिन्ता न करे। इस तरह आत्मामें मनके लवलीन होनेपर पुण्यात्मा योगीको निरतिशय ब्रह्मसुख प्राप्त होता है। जिनका मन बाहिरी इन्द्रियोंके विषयोंमें नहीं फंसता है उनको आत्माका ही आनन्द मिलता है, ऐसे ब्रह्ममें योगयुक्त पुरुष नित्यानन्दका उपभोग करते हैं। यही मानस व्रतका अलौकिक, अनुपम आनन्दमय उत्सव है। वाचिक कायिक व्रतोंका उत्सव यथा श्रीमद्भागवतमें—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चै-
र्हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥

व्रतके उत्सवमें भगवद्भक्त व्रती भगवान्के प्रति अनुरागसे द्रवचित्त होकर लोकलज्जा छोड़ हंसते, रोते, गाते, नाचते रहते हैं। इस प्रकार उत्सवसे लाभ क्या होता है, इस प्रश्नका उत्तर शास्त्रमें यह दिया गया है, कि "उत्सवमें उत्सवपात्र भगवद्विभूति तथा भगवदवतारादिके अलौकिक गुणग्राम हृद्गत होकर मनुष्यहृदयको शिवभावमें अवश्य ही भावित कर देते हैं। श्रीकृष्णजन्मके महोत्सवको मनाते समय पूर्णावतार नन्द-नन्दनकी अलौकिक सर्वाङ्गसंम्पूर्ण चरित्र चिन्ताके द्वारा किसका हृदयकमल शतदल कमलकी तरह प्रस्फुटित होकर श्रीभगवान्के चरण कमलोंमें उत्सर्गीकृत न होगा? नवघनश्याम भगवान् रामचन्द्रके दशानन विजयोत्सवको मनाते समय किस आर्यसन्तानकी पवित्र धमनीमें असुर-विजयमयी रुधिर धारा प्रवाहित न होगी? इस प्रकारके उत्सवों द्वारा मनुष्यहृदय अवश्य ही वीरता, धीरता, उदारता, आस्तिकता, धर्मप्राणता, महाप्राणता, आध्यात्मिकता आदि देवदुर्लभ गुणोंका विकाशस्थल बन सकता है।" एक आख्यायिका है, कि "प्राचीन कालमें कुलशेखर नामका एक राजा नीलाचल पर्वतपर रहता था, जो सीतारामका बड़ा भक्त था। एक समय वह राजा वाल्मीकि रामायणकी कथा सुन रहा था। जिस समय कथा व्यासने कहा, कि श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थितिमें रावण आया और जगज्जननी जनकनन्दिनीको पञ्चवटीसे चुराकर ले गया, उसी समय इस घटनाको सुनकर शोकसन्तप्त राजा कुलशेखर अपने आपको भूल गया और अतीत वृत्तान्तको वर्त्तमानमें जानकर खड्ग हाथमें ले लंकापुरीकी ओर चलने लगा तथा सेतुबन्धके पास क्षारसिन्धुके तटपर खड़ा हो गया। वह चाहता था कि समुद्रमें कूदकर दुष्ट रावणको दण्ड दे सीता माताको छुड़ा लावे। इतनेमें श्रीरामचन्द्र भगवान् सीतासहित नावमें दिखाई दिये और उन्होंने कहा—"राजन्! मैं सीताको ले आया हूं, अब तुम्हारे जानेकी आवश्यकता नहीं है।" यही उत्सवमें उत्सवपात्रके भावमें तन्मय होनेका दिव्य फल है।

श्रीभगवान् रामचन्द्र किसके मित्र नहीं थे? नरके मित्र थे, वानरके मित्र थे, देवताके मित्र थे, अपदेवताके मित्र थे, असुरके मित्र थे, राक्षसके मित्र थे, रीचके मित्र थे, गिल्हेरीके मित्र थे, चण्डालके मित्र थे, भीलके मित्र थे। नीचसे नीचके मित्र होनेपर भी मर्यादापुरुषोत्तम थे, उन्होंने अपनी वर्णाश्रम मर्यादाको नहीं बिगाड़ा; बल्कि मर्यादा बिगाड़नेवाले शूद्र तपस्वीका भी सिर काट दिया। आज हम थोड़ी ही वैषयिक सुविधाके लिये कुटुम्बोंसे लड़ मरते हैं, भाई भाईमें तथा देशभाईयोंमें झगड़ा फैलाते हैं, वर्णाश्रम मर्यादाको मिट्टीमे मिला देते हैं, क्या ये सब सच्चे रामोत्सवके लक्षण हैं? कदापि नहीं। नीतिशास्त्रमें लिखा है—

बहुभिर्न विरोद्धव्यं दुर्जनैः सुजनैरपि।
स्फुरन्तमपि नागेन्द्रं भक्षयन्ति पिपीलिकाः॥

गृहस्थोंको अच्छे बुरे बहुतोंसे विरोध नहीं करना चाहिये। क्योंकि जिस प्रकार प्रबल विषधर सर्पको हजारों चीटियां मिल कर खा जाती हैं, ऐसे ही बहुतोंसे विरोध रखनेपर गृहस्थाश्रममें अनेक असुविधाएं होती हैं, ये ही सब बातें रामोत्सवके साथ साथ रामजीवनसे अवश्य सीखने योग्य हैं। उनका पितृप्रेम, भ्रातृप्रेम, प्रजाप्रेम, पत्नीप्रेम, समस्त जीवके प्रति प्रेम संसारमें आदर्शरूप है। वे वास्तवमें ही—'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' थे। कर्त्तव्यमें वज्रकठोर और स्वाभाविक वर्त्तावमें कुसुमकोमल थे। लक्ष्मण और सीताके प्रति इतना प्रेम होनेपर भी धार्मिक कर्त्तव्य पालनके लिये उन्हें परित्याग कर दिया था। येही उनके उत्सवमें उनमें तन्मय होकर लाभ करने योग्य विषय हैं।

देवादिदेव महादेवके कुबेर भण्डारी तथा अन्नपूर्णा गृहिणी रहनेपर भी वे भिक्षा ही मांगते रहते हैं। अन्नपूर्णाका अन्न और कुबेरका धन वे विश्वमे ही बांट देते हैं। इसीलिये वे महान् हैं। महाशिवरात्रिव्रतका उत्सव करते समय हमारे भीतर भी यही महान् भाव आना चाहिये, कि सत्पुरुषोंकी समस्त सम्पत्ति परोपकारके लिये ही होती है। महादेव मदनदहन हैं, पार्वतीको वामांकमें रखते हुए भी जितेन्द्रियताकी मूर्त्ति हैं। विकारके हेतुके सामने रहनेपर भी जो पुरुष धीर रह सकते हैं, उनका ही तृतीय नेत्र-ज्ञाननेत्र विकसित हो सकता है और वे ही मदनको मार सकते हैं। शिवोत्सवके फलसे व्रतीको ऐसा ही संयम सीखना चाहिये, उनके कण्ठमें विष और ललाटमें सुधाकरकी सुधा है। उनके सर्वाङ्गमें विषधर भुजङ्ग और मस्तकमें अमृतमयी गङ्गा हैं। परस्पर

विरोधका कैसा सामञ्जस्य है! यही तो पूर्ण पुरुषका लक्षण है। रागद्वेष, पाप पुण्य, शत्रु मित्र, विष अमृत सभी–द्वन्द्वभाव वहां लय है। शिवभावमें उत्सवके समय तन्मय होकर यदि हमें ऐसी ही समता प्राप्त हो गई तभी शिवोत्सव पूर्ण हो गया। यही उत्सवका अपूर्व, अलौकिक तत्त्व है।

विष्णुकी उपासना तथा वैष्णव व्रतोत्सव सभी लोग करते हैं, किन्तु इसका यथार्थ फल किसने प्राप्त किया है? उनके चार हाथकी नहीं, यदि एक ही हाथकी सच्ची उपासना की जाती तो भारतकी तथा हिन्दु जातिकी ऐसी भीषण दुर्दशा आज नहीं रहती। उनका चक्रधारी हाथ दुष्ट दमन और सज्जनोंकी रक्षाके लिये है, उनका गदाधारी हाथ शक्ति सहायतासे धनका देनेवाला है। उनका कमलधारी हाथ कमनीय शिल्पमाधुरी, शिल्पकला प्रदान करता है और उनका शंखसुशोभित हाथ आदिनाद प्रणवकी सहायतासे मुक्तिद्वार उद्घाटन करने वाला है। क्षत्रिय शक्ति, वैश्य शक्ति, शूद्र शक्ति, ब्राह्मण शक्ति, सर्व शक्तिमान् भगवान्के चारों हाथोंमें भरपुर भरी हुई है। धर्म अर्थ काम मोक्ष यथाक्रम एक एक हाथमें विराजमान हैं। यदि विष्णु व्रतका उत्सव करते हुए एक ही हाथके भावमें तन्मयता हो जाय तो हिन्दु जातिकी दुःखमयी अमाविशा सदाके लिये अस्तमित होजाय इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं।

क्या शक्ति व्रतके उत्सव करने वालोंको भी यह रहस्य बताना पड़ेगा कि धर्म और राजनीतिकी पारस्परिक सहायतासे ही असुरदलन हो सकता है? रजोगुणी सिंह राजनीतिक शक्ति और देवी दुर्गा सत्त्वगुणमयी धर्मशक्ति हैं। राजनीतिक शक्ति उद्दाम, उच्छृङ्खल, स्वेच्छाचारी नहीं है, किन्तु ऊपर विराजमान धर्मशक्तिका वाहन बनकर उसीके इङ्गितसे काम करती है और उसीकी सहायक है। इन दोनों शक्तियोंकी एकता होनेसे ही धन, बल, विद्या बुद्धि और भी चार शक्तियां–लक्ष्मी, कार्त्तिकेय, सरस्वती, गणेश रूपसे महाशक्तिकी दोनों ओर स्वयं ही प्राप्त हो गई हैं। फल-असुरनिधन, महिषासुरमर्दन है, देवताओंका जय और असुरोंका पराजय है, देवराज्योंका उद्धार है। शक्ति उत्सवका यही मूलमन्त्र है, और यही दिव्य मन्त्रसिद्धिका अलौकिक शुभ परिणाम है। आशा है, कि उत्सवका यह रहस्य हिन्दु-जाति अब क्रमशः समझती जायगी।

यही संक्षेपसे वर्णित व्रतोत्सव महिमा है।

अष्टम काण्डकी द्वितीय शाखा समाप्त हुई।

तीर्थ-महिमा।

'तरति पापादिकं यस्मात्' जिन पुण्यस्थानोंमें जानेपर पापनाश तथा पुण्यसंचय होता है उन्हें तीर्थ कहते हैं। साधारण स्थानोंकी अपेक्षा तीर्थस्थानमें विशेष दैवीशक्ति है जिसके प्रभावसे पाप कटता है और पुण्य मिलता है, इसी कारण तीर्थ तथा तीर्थ यात्राकी इतनी महिमा आर्यशास्त्रमें वर्णित की गई है। वेदमें भी—

सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वां विसृजन्ति धीरास्ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते॥
(ऋ० परिशिष्ट)

गङ्गा यमुनाके सङ्गमस्थान प्रयागतीर्थमें स्नान करनेपर स्वर्ग प्राप्ति और शरीर त्याग करनेपर मोक्ष प्राप्ति होती है, इत्यादि तीर्थमहिमा विषयक अनेक प्रमाण मिलते हैं। महाभारतमें पितामह भीष्मदेवने तीर्थका लक्षण तथा स्वरूप निम्नलिखितरूपसे बताया है यथा—

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः।
तथा पृथिव्या उद्देशाः केचित् पुण्यतमाः स्मृताः॥
प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता॥
तस्माद्भौमेषु तीर्थेषु मानसेषु च नित्यशः।
उभयेषु च यः स्नाति स याति परमां गतिम्॥

समस्त शरीर पाञ्चभौतिक होनेपर भी सब अङ्गोंमें एक सी शक्ति नहीं है। जो विशेष शक्ति नाभि, हृदय, भ्रूमध्य या मस्तकमें है, वह करचरणादिमें नहीं है, जो पवित्रता दक्षिण कर्ण या द्विदलमें है वह वामकर्णादिमें नहीं है। इस लिये इन श्लोकोंमें कहा गया है कि जिस प्रकार शरीरमें कोई कोई स्थान पवित्र कहलाते हैं, ऐसा ही पृथिवीमें भी–कोई कोई स्थान पुण्यमय, पवित्रतामय होते हैं। भूमिके स्वाभाविक विशेष प्रभावसे, जलकी नैसर्गिक विशेष शक्तिसे

या ऋषि मुनियोंके वहांपर निवास तपस्या आदि कारणोंसे ऐसी विशेष पवित्रता तथा विशेष दिव्य शक्ति तीर्थोंमें आती है। इस लिये स्थूल तथा मानस तीर्थमें स्नान करने वालेको परम गति प्राप्त होती है।

आर्यशास्त्रमें तीर्थ नामसे अनेक वस्तुओंका प्रयोग देखा जाता है। मन्त्री पुरोहित, युवराज, द्वारपाल, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल आदि जो अठारह राष्ट्र सम्पत्तियां हैं, जिनमें स्नान, करनेसे अर्थात् जिनका भेद जाननेसे राजा राज्यशासन ठीक ठीक कर सकता है, वे सब तीर्थ कहे जाते हैं। एक साथ एक आचार्यके पास एक प्रकारके शास्त्र पढ़ने वाले छात्र भी सतीर्थ्य कहलाते हैं। यहां पर शास्त्रके लिये तीर्थ शब्दका प्रयोग हुआ है और इसीसे शास्त्रजगत्में 'तीर्थ' उपाधि भी प्राप्त होता है। प्राणतोषिणी तन्त्रमें लिखा है—

त्रिवेणीसङ्गमे तीर्थे तत्त्वमस्यादिलक्षणे।
स्नायात्तत्त्वार्थभावेन तीर्थनामा स उच्यते॥
(अवधूत प्रकरण)

जिसने आध्यात्मिक त्रिवेणीमें 'तत्त्वमसि' भावसे योगस्नान किया है अर्थात् योग द्वारा इड़ा पिङ्गला सुषुम्नाके सङ्गम स्थानमें मनोलय करके जीव ब्रह्मकी एकताका अनुभव किया है वह तीर्थ नामा सन्न्यासी कहलाता है। यह तुरीयाश्रमका उपाधिविशेष 'तीर्थ' शब्द वाच्य है। मार्कण्डेय पुराण ३४। १०३-१०७ में लिखा है—

कुर्यात् कर्माणि तीर्थेन स्वेन स्वेन यथाविधि।
देवादीनां तथा कुर्याद्ब्राह्मेनाचमनक्रियाम्॥
अंगुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य तु।
एतद्ब्राह्ममिति ख्यातं तीर्थमाचमनाय वै॥
तर्ज्जन्यंगुष्ठयोरन्तः पैत्रं तीर्थमुदाहृतम्।
पितॄणां तेन तोयादि दद्यान्नान्दीमुखाहृते॥
अंगुल्यग्रे तथा दैवं तेन दिव्यक्रियाविधिः।
तीर्थं कनिष्ठिकामूले कायं तेन प्रजापतेः॥
एवमेभिः सदा तीर्थैर्देवानां पितृभिः सह।
सदा कार्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थेन कर्हिचित्॥

हाथके खास खास स्थानोंको तीर्थ कहा गया है। यथा—दक्षिण हस्तके अंगुष्ठके उत्तरसे जो रेखा गई है उसको ब्रह्मतीर्थ कहते हैं। इसीमें जल लेकर आचमन करना होता है। तर्जनी और अंगुष्ठका अन्त भाग पितृतीर्थ है। नान्दीमुख छोड़कर बाकी सब श्राद्धोंमें इसीसे जलादि दिया जाता है। अंगुलियोंके अग्रभागको दैवतीर्थ कहते हैं, जिससे दैवकार्य किया जाता है। कनिष्ठ अंगुलिके अधोभागका नाम कायतीर्थ या प्राजापत्यतीर्थ है, इसके द्वारा प्रजापतिका कार्य करना होता है। इस प्रकारसे निर्दिष्ट तीर्थोंके द्वारा दैवकार्य तथा पितृकार्य करना उचित है। बृहद्धर्मपुराणमें १५ अध्यायमें लिखा है—

विप्राणां चरणौ तीर्थौ गवां पृष्ठं तथा मतम्।
एते यत्र हि तिष्ठन्ति तच्च तीर्थमुदाहृतम्॥

ब्राह्मणोंके चरणोंमें तीर्थ और गौओंके पृष्ठपर तीर्थ है। वे जहां ठहरे वह भी तीर्थ माना जाता है। काशीखण्डमें लिखा है—

ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुध्यन्ति मलिना जनाः॥

ब्राह्मण सकल कामना सिद्ध करनेवाले निर्मल जङ्गम तीर्थ हैं। इनके वाक्यरूपी जलसे मलिन मानव भी पवित्र हो जाते हैं। महर्षि पराशरने (आन्हिकाचारतत्त्व) कहा है—

प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाद्या सरितस्तथा।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे वसन्ति मनुरब्रवीत्॥

ब्राह्मणके दक्षिण कर्णमें प्रभास आदि तीर्थ तथा गङ्गा आदि देवनदियोंका निवासस्थान है। वह बहुत ही पवित्र है।

जङ्गम तीर्थकी तरह मानसतीर्थका भी वर्णन शास्त्रमें मिलता है। यथा महाभारत तथा काशीखण्डमें—

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघ!
येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्॥
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥

दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥
यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः॥
दानमिष्टं तपः शौचं तीर्थं सेवा श्रुतं तथा।
सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसते नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च॥
ज्ञानपूते ध्यानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥
एतत्ते कथितं राजन् मानसं तीर्थलक्षणम्॥

भीष्म पितामहने महाराज युधिष्ठिरसे मानसतीर्थका ऊपर लिखित लक्षण कहा था। सत्य, क्षमा, जितेन्द्रियता, जीवदया, सरलता, दान, दम, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, ज्ञान, धैर्य, तप ये सब मानसतीर्थ हैं। इनमेंसे मनकी पवित्रता सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ है। लोभी, परस्पर द्रोहकारी, खल, क्रूर, दाम्भिक, विषयी-व्यक्ति सब तीर्थमें स्नान करनेपर भी मलिन ही रह जाता है। यदि भाव निर्मल न रहे तो दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थ वेदपाठ सभी निष्फल होता है। इन्द्रियोंका निग्रह करके मनुष्य चाहे कहीं रहे वहीं उसका कुरुक्षेत्र नैमिषारण्य, पुष्कर तीर्थ है। राग द्वेषरूपी मलनाशकारी ज्ञानसे पवित्र, ध्यान-जलमय मानसतीर्थमें जो स्नान करता है उसे परमगति प्राप्त होती है। यही सब मानस तीर्थका अपूर्व लक्षण है।

जङ्गम और मानस तीर्थका लक्षण बताकर अब स्थावर तीर्थके वर्णन किये जाते हैं। पद्मपुराणमें लिखा है—

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भुव्यन्तरीक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि॥

स्वर्ग, मर्त्य, अन्तरिक्षमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। ये सभी तीर्थ पुनः नित्य, नैमित्तिक दो प्रकारके होते हैं। मर्मस्थान होनेके कारण जिन तीर्थोंमें नैसर्गिकरूपसे या दैव कारणसे विशेष शक्तिका विकाश है उन्हें नित्य तीर्थ कहते हैं। "केनापि न कृतं यत्र देवखातमिति स्मृतम्" जिन तीर्थोंको किसीने बनाया नहीं वे नित्य तीर्थ या दैवतीर्थ हैं, ऐसा शास्त्रमें प्रमाण भी मिलता है। नैमित्तिक तीर्थ दूसरेके बनाये बनते हैं और बिगाड़नेसे भी बिगड़ते हैं। वे तीन तरहके होते हैं यथा-आसुर, आर्ष और मानुषी। अतः नित्य नैमित्तिक सभी तीर्थ चार प्रकारके हुए यथा ब्रह्मपुराणमें—

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
दैवानि मुनिशार्दूल आसुराण्यार्षकाणि च॥
मानुषाणि च लोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः।
ब्रह्मविष्णुशिवैर्देवैर्निर्मितं दैवमुच्यते॥
एवं च वाराणसीप्रभासपुष्करादीनि दैवानि।
ब्राह्मी सरस्वती मूर्त्तिर्गङ्गा मूर्त्तिस्तु वैष्णवी॥
नर्मदा शांकरी मूर्त्तिस्तिस्रो नद्यस्त्रिदेवताः।

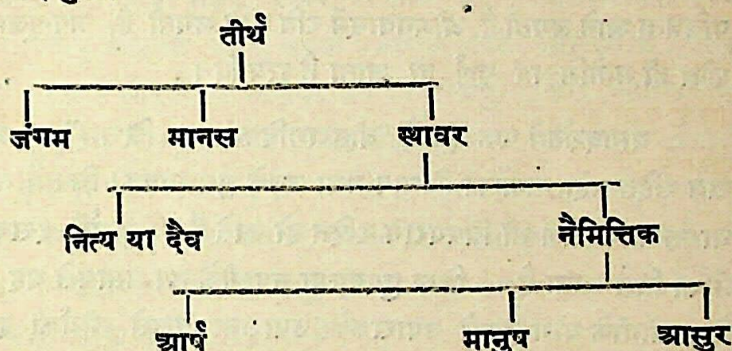
(रेवाखण्डे)

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका।
भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती॥
विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताश्रिताः।
एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्थान्युदाहृताः॥

आसुराणि, गयासुरादिनिर्मितानि गयादीनि। आर्षाणि ऋषिभिः प्रतिष्ठितानि। मानुषाणि, सोमसवितृवंशप्रसूतराजभिः प्रतिष्ठितानि।

स्वर्ग, मर्त्य, पातालमें चार प्रकारके तीर्थ होते हैं यथा,—दैव, आसुर, आर्ष और मानुषी। ब्रह्मा-विष्णु-महेश प्रतिष्ठित काशी, प्रभास, पुष्कर आदि नित्यशक्तियुक्त तीर्थ नित्य या दैव तीर्थ कहाते हैं। गङ्गा, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, वेणिका, यमुना, विशोका, वितस्ता—ये सब देवनदियां दैव तीर्थ हैं। सरस्वती ब्राह्मीमूर्त्ति, गङ्गा वैष्णवी मूर्त्ति और नर्मदा

शैवी मूर्त्ति कहलाती हैं। गयासुर आदि असुरोंके द्वारा प्रतिष्ठित गया आदि आसुर तीर्थ हैं। ऋषियोंके द्वारा प्रतिष्ठित आर्ष तीर्थ हैं और सूर्य-चन्द्रवंशीय नरपतियोंके द्वारा प्रतिष्ठित मानुषी तीर्थ हैं। इस तरह सब मिला कर तीर्थके निम्नलिखित भेद हुए।



तीर्थयात्राके द्वारा असीम फल प्राप्त होता है। श्रीभगवान्‌ने गीतामें कहा है :—

"ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते,

सङ्गात् संजायते कामः"।

महाभारतमें भी लिखा है—

"नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान्"।

विषयकी चिन्ता करते करते उसमें आसक्ति हो जाती है और आसक्तिसे ही कामादि पाप वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। नारी जाति अग्निकी तरह और पुरुष घीके कुम्भकी तरह हैं, पास रहनेसे ही पिगलना स्वाभाविक है। अतः पुरुष यदि विषयसे बचकर आत्माके पथमें अग्रसर होना चाहे तो उसे चाहिये कि हर समय न हो सके कमसे कम बीच बीचमें ही वैषयिक सम्पर्कसे दूर और आध्यात्मिक सम्पर्कके समीप रहा करे। तीर्थ यात्रामें अनायास ही यह मौका गृहस्थोंको मिल सकता है। तीर्थके बहानेसे विषयसे दूर रहा जाता है और वहांपर स्थान माहात्म्य, दैवशक्तिका प्रभाव तथा तीर्थनिवासी साधुसज्जनोंके सङ्गसे उन्नतिप्रयासी गृहस्थपुरुषको बहुत कुछ लाभ होता है। और यदि एकाकी न जाकर सपरिवार हो तीर्थ यात्रा करे तो भी ऊपर वर्णित कारणोंसे आध्यात्मिक, आधिदैविक लाभ ही रहता है। तीर्थमें जाकर व्रत, उपवास, संयम आदि करनेके जो नियम हैं उनसे भी विशेष आध्यात्मिक उन्नति होती है।

नित्यतीर्थमें स्वभावतः और नैमित्तिक तीर्थमें तीर्थ प्रतिष्ठाताके तपःफलसे दैवीशक्ति प्रचुर रहा करती है। अतः उस दैवशक्तिपूर्ण वायुमण्डलमें जानेपर तीर्थयात्रीको उस शक्तिसे बहुत कुछ लाभ मिलता है। चञ्चल मन बुद्धिको धैर्य्य तथा शान्ति मिलती है, विषयवासना खुद बखुद दबने लगती है, चित्तमें पवित्रता आने लगती है, श्रीभगवान्में रति होने लगती है, जप-पूजा पुरश्चरणसे शीघ्र ही मनोभिलाष पूर्ण हो जाता है इत्यादि।

योगदर्शनमें एक सूत्र है "वीतरागविषयं वा चित्तम्"। अर्थात् विषय राग रहित महात्माओंका चिन्तन तथा उनके शुभ भावको चित्तमें धारण करनेसे धारण करने वाले भी विषयराग रहित हो जाते हैं। तीर्थमें इसका स्वतः ही मौका मिल जाता है। जिस पुण्यात्मा तपस्वीके तप प्रभावसे वह तीर्थ बना है, जिस योगीके योग बलसे उपासकके उपासना बलसे तीर्थकी इतनी महिमा बढ़ी चढ़ी है, तीर्थमें पहुंचते ही उनकी चरित्र चिन्ता तथा अलौकिक विभूतिकी चिन्ता करनेसे तीर्थ यात्रीका हृदय द्रवीभूत हो जाता है, प्रेम भक्ति श्रद्धा सलिलसे पाप भरे हृदयका सब पाप धुल जाता है और मुमुक्षु तीर्थसेवी पवित्र चित्त होकर सहजही परमात्माके पथमें प्रस्थान कर सकते हैं।

तीर्थमें अनेक महात्माओंके आश्रम होते हैं, उनमें कितने ही महात्मा ब्रह्मलीन हो गये हैं और कितने ही अभी तक बिराजमान हैं। उनके महिमा श्रवण, चरित्र चिन्तन तथा सत्सङ्गसे महापापी भी तर जाते हैं।

क्षणमिह सज्जनसङ्गतिरेका
भवति भवार्णवतरणे नौका।

क्षणभरका भी सज्जनसङ्ग संसार समुद्र तरनेके लिये नाव बनता है। तीर्थ सेवाके साथ साथ यह भी महाफल लाभ होता है।

दुर्गम तीर्थ जानेमें भगवान्के प्रति निर्भर किये बिना उपायान्तर नहीं है। ऐसी निर्भरता होनेपर दैव चमत्कार, दैवीविभूति बहुत कुछ अनुभवमें आने लगती है। कितने ही बार कठिन संकटमय स्थानसे केवल उन्हींकी कृपासे तीर्थसेवी बच कर निकलते हैं। कितने ही बार निराहार प्राण जानेके मौकेपर न जाने किसी दैवी विभूतिके बलसे सब कुछ इन्तजाम अलौकिक रूपसे हो जाता है। इन्हीं दैव कारणोंको तीर्थयात्री जितना ही आंखोंके

सामने देखता है उतनी उनकी आस्तिकता, भगवत् प्रेम, श्रद्धा भक्ति भूरि-भूरि वृद्धिगत होती है।

तीर्थोंकी दैवी सम्पत्ति केवल मनवुद्धिके लिये नहीं, अधिकन्तु शारीरिक नैरोग्यके लिये भी बहुत कुछ फलदायिनी होती है। अमरनाथ तीर्थकी दैवी विभूतिको पाकर तीर्थसेवी अजर, अमर हो जाते हैं। मन्दाकिनीकी दिव्य धारामें स्नान, पवित्र जलपान करके सकल प्रकारकी कठिन व्याधियोंके हाथसे जीव निस्तार पाता है और दिव्य कलेवर बन कर शतायु सुखसे बिता सकता है। नर्मदा, शोणभद्र, सिन्धुके उत्तम पाचक जलको पीकर अति कठिन अजीर्ण रोगग्रस्त भी वृकोदर बन सकता है। जगन्नाथ, भुवनेश्वर, हरद्वार, कुरुक्षेत्र, द्वारका, सेतुबन्धरामेश्वर, बदरिकाश्रम, गोदावरी, ज्वालामुखी, विन्ध्यवासिनी आदि तीर्थसेवन स्वास्थ्यलाभके लिये बहुत ही उपयोगी है। यही सब तीर्थकी दैवीसम्पत्तिसे शारीरिक लाभका दृष्टान्त है।

तीर्थोंकी प्राकृतिक शोभा कुछ विलक्षण ही है, यह शोभा तत्त्वदर्शीके लिये आत्मानन्दप्रदायिनी, योगीके लिये सुलभ योगसिद्धिदायिनी, भावुक भक्तके लिये भावसागरमें सुशीतल अवगाहन स्नानदायिनी, संसारशोकसन्तप्तके लिये शान्तिसुधासिञ्चनकारिणी और कविके लिये काव्यकलाविलासप्रदायिनी है। कहीं हिमगिरिकी भगवत्प्रेमाश्रुधारारूपसे जाह्नवी यमुनाकी दिव्यधाराएं बह रही हैं, कहीं विन्ध्याचल विराट पुरुषके विराट वक्षरूपसे विराजमान है, कहीं सिन्धु पञ्चभुजा पसार कर श्रीभगवान्‌के राजीवचरणोंमें अर्घ्यदान कर रहा है, कहीं गगनचुम्बी विशाल वटतरु निस्पन्द होकर मुकुन्दपदध्यानमें निमग्न है, कहीं स्वच्छ सरोवरमें फुल्ल शतदल कमल हरविलासिनीके हास्यरूपसे त्रिभुवनको मोहित कर रहा है, कहीं दिव्य कुञ्ज निकुञ्ज मधुरभ्रमरगुञ्जारसे गुञ्जरित हो रहा है, मानों एकाधारमें योगी-भोगी-वियोगी-विरागी सभीके लिये शरीर-मन-प्राणोल्लासकारिणी सभी व्यवस्था श्रीभगवान्‌ने कर रक्खी हैं। परमात्माकी विराट मूर्त्तिकी इस प्रकार विभूतिको देखकर तीर्थयात्री बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।

तीर्थ-यात्राके निमित्तको लेकर मनुष्यको नाना देश देखनेका मौका मिलता है। अनेक देशमें अनेक प्रकार मनुष्योंसे परिचय, भिन्न भिन्न देशकी प्रकृतिसे परिचय, आचार चरित्र आदिसे परिचय, सामाजिक धार्मिक आध्यात्मिक रीति नीतिसे परिचय ये सभी विशेष अभिज्ञताप्रद हैं इसमें अणुमात्र सन्देह

नहीं । त्रिगुणमयी प्रकृतिके गुणभावको देखकर ही पुरुषको मोक्ष होता है, साधारण पुस्तककी अपेक्षा प्रकृतिकी पुस्तक ही अधिक शिक्षाप्रद है, इसी उदार शिक्षासे शिक्षित होकर भाग्यवान् तीर्थयात्री अनायास ही लौकिक अलौकिक बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं ।

इन्हीं सब कारणोंसे आर्यशास्त्रमें नित्य नैमित्तिक सभी तीर्थोंकी विशेष महिमा बताई गई है, यथा—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।
तासु वासं प्रकुर्वन्ति ये मृता वा नराः परम् ।
लभन्ते न पुनर्जन्म मातृगर्भेषु कुत्रचित् ।।

(पद्मपुराण भूमिखण्ड)

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती और द्वारवती ये सात तीर्थ मोक्षदायक हैं । इनमें निवास करने पर अथवा इन तीर्थोंमें शरीर त्याग होने पर जीवको पुनः मातृगर्भमें आना नहीं पड़ता है ।

कीर्त्तनाच्चैव तीर्थस्य स्नानाच्च पितृतर्पणात् ।
धुन्वन्ति पापं तीर्थे ये ते प्रयान्ति सुखं परम् ।।
तथा पुण्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
उपास्य पुण्यं लब्धा च भवत्यमरलोकभाक् ।।
संवत्सरशतं साग्रं निराहारस्य यत्फलम् ।
प्रयागे माघमासेऽस्य त्र्यहस्नातस्य तत्फलम् ।।

(महाभारत)

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्त्तनादपि ।
मृत्तिकालभनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते ।।
गङ्गागङ्गेति यैर्नाम योजनानां शतैरपि ।
स्थितैरुच्चारितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम् ।।

(ब्रह्मपुराण)

कृते च पुष्करं तीर्थं त्रेतायां नैमिषन्तथा।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गंगां समाश्रयेत्॥

(पद्मपुराण)

वाराणस्यां महातीर्थे नरः स्नात्वा विमुच्यते।
सप्तजन्मकृतात् पापाद्‌ गमनादेव मुच्यते॥
'सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्।'

(ब्रह्मपुराण)

यत्र स्नानं जपो होमः श्राद्धधदानादिकं कृतम्।
एकैकशो मुनिश्रेष्ठाः पुनात्यासप्तमं कुलम्॥

(महाभारत)

जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रिया वा पुरुषस्य वा।
पुष्करे स्नातमात्रस्य सर्वमेव प्रणश्यति॥

(स्कन्द पुराण)

गङ्गा तु प्रथमा पुण्या यमुना गोमती पुनः।
सरयूः सरस्वती चैव चन्द्रभागाथ चर्मिला॥
कुरुक्षेत्रं गया चैव पुष्कराणि तथा पुनः।
नर्मदा च महापुण्या तीर्थान्येतानि चोत्तरे॥
तापी पयोष्णी पुण्ये द्वे तत्संगं तीर्थमुत्तमम्।
गोदावरी महापुण्या सर्वत्र द्विजसत्तम॥
तत्र तीर्थान्यनेकानि सर्वपापहराणि वै।
येषु स्नात्वा च पीत्वा च पापं मुञ्चति मानवः॥

(नरसिंह पुराण)

कृत्वा पापमविज्ञातं भ्रूणहत्यादि तत्पुनः।
विनश्यति महायज्ञैरथवा तीर्थचर्यया॥
सर्वाः समुद्रगाः पुण्याः सर्वे पुण्या नगोत्तमाः।
सर्वमायतनं पुण्यं सर्वे पुण्या वनाश्रमाः॥

(देवल)

तीर्थमहिमा कीर्त्तन, तीर्थस्नान तथा तीर्थमें पितृतर्पण द्वारा जो मनुष्य अपना पाप नष्ट करते हैं, उन्हें परम सुख प्राप्त होता है। पुण्यतीर्थ तथा काशी, केदार, महाकाल आदि पुण्यायतनके सेवन द्वारा अर्जित पुण्यप्रतापसे जीव अमरलोकका अधिकारी हो जाता है। सौ वर्ष निराहार रहनेका जो फल है, प्रयागमें माघ मासमें तीन दिन स्नानका वही फल है। प्रयागतीर्थके दर्शन, नामकीर्त्तन तथा मिट्टी पाकर मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। शत योजन दूरसे भी 'गङ्गा गङ्गा' यह नाम उच्चारण करनेसे तीन जन्मका पाप कटता है। सत्ययुगमें पुष्कर तीर्थ, त्रेतामें नैमिषारण्य, द्वापरमें कुरुक्षेत्र और कलिमें गङ्गाका सेवन करना चाहिये। काशी महातीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे मुक्ति और जाने मात्रसे सात जन्मका पाप कटता है। गंगा नाममात्रसे और नर्मदा दर्शनसे पवित्र करनेवाली है। तीर्थमें जाकर स्नान, जप, हवन, श्राद्ध तथा दानादि करनेसे कुलके सात पुरुषतक पवित्र हो जाते हैं। स्त्री या पुरुषके जन्म भरके किये हुए सब पाप पुष्करमें नहाने मात्रसे नष्ट हो जाते हैं। सबसे श्रेष्ठ पुण्यदायिनी गङ्गा है, उसके बाद यमुना, गोमती, सरयू, सरस्वती, चन्द्रभागा, चर्मिला ये भी सब पुण्यनदियां हैं। कुरुक्षेत्र, गया, पुष्कर, नर्मदा ये सब महापुण्यमय तीर्थ हैं। तापी, पयोष्णी, गोदावरी ये भी महापुण्यमयी हैं। ऐसे ही सकलपापनाशकारी अनेक तीर्थ हैं, जिनमें स्नान, आचमन करनेसे मनुष्य पापमुक्त हो सकता है। अज्ञात पाप या भ्रूणहत्यादि करनेपर यदि महायज्ञ करे या तीर्थसेवा करे, तो पाप नष्ट होता है। गंगा-यमुनादि समुद्रगामिनी समस्त नदियां पवित्र हैं, हिमालय आदि देवतात्मा समस्त पर्वत पवित्र हैं, काशी, केदार आदि समस्त आयतन पवित्र हैं और नैमिषारण्य आदि समस्त वनाश्रम पवित्र हैं। इस प्रकारसे तीर्थोंकी प्रचुर महिमा आर्य-शास्त्रमें बताई गई है।

अब तीर्थयात्राके विषयमें कुछ नियम तथा आवश्यक विवरण बताये जाते हैं।

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥
तिर्य्यग्योनिं न वै गच्छेत् कुदेशे न च जायते ।
न दुःखी स्यात् स्वर्गभाक् च मोक्षोपायं च विन्दति।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥
अदाम्भिको निरारम्भो लघ्वाहारी जितेन्द्रियः ।
विमुक्तः सर्वसंगैर्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पश्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥

(काशीखण्ड)

प्रचुर दक्षिणा देकर अग्निष्टोम आदि यज्ञ करनेपर भी जो फल नहीं मिलता है, केवल तीर्थ सेवा द्वारा वह फल प्राप्त होता है। तीर्थसेवीका तिर्यक योनिमें जन्म नहीं होता है। कुदेशमें जन्म नहीं होता है किसी प्रकारका दुःख नहीं होता है, वह स्वर्गवासी होकर मोक्षके उपायको प्राप्त करता है। जिसका हस्तपद मन सुसंयत है और विद्या तपस्या तथा कीर्त्ति है उसीको तीर्थयात्राका फल मिलता है। अदाम्भिक, आरम्भरहित, मिताहारी, जितेन्द्रिय, सङ्गरहित व्यक्तिको ही तीर्थयात्राका फल मिलता है। क्रोधरहित, निर्मलचित्त, सत्यवादी, दृढ़व्रत, सबको निज जैसे देखनेवाले व्यक्तिको ही तीर्थयात्राका फल मिलता है। जिसके अन्तःकरणमें श्रद्धा नहीं है, जो पापी है, नास्तिक है, संशयी तथा कुतार्किक है उसे तीर्थफल नहीं मिलता है।

यो यः कश्चित्तीर्थयात्रान्तु गच्छेत्
सुसंयतः स च पूर्वं गृहे स्वे ।
कृतोपवासः शुचिरप्रमत्तः
संपूजयेद्भक्तिनम्रो गणेशम् ॥
देवान् पितॄन् ब्राह्मणांश्चैव साधून्
धीमान् प्रीणयन् वित्तशक्त्या प्रयत्नात् ।
प्रत्यागतश्चापि पुनस्तथैव

देवान् पितॄन् ब्राह्मणान् पूजयेच्च ॥
एवं कुर्वतस्तस्य तीर्थे यदुक्तं
फलं तत् स्यान्नात्र सन्देह एव ॥

(ब्रह्मपुराण)

तीर्थ यात्रासे पहिले अपने घरमें संयमपूर्वक उपवास करके गणपति पूजन तथा देवता, पितर, साधु, ब्राह्मणोंका पूजा सत्कार यथाशक्ति करना होता है। ऐसा ही तीर्थसे लौटकर भीं करना होता है। इससे निःसन्देह फल-लाभ होता है।

ऐश्वर्यलाभमाहात्म्याद्द गच्छेद्द यानेन यो नरः ।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्द यानं विवर्जयेत् ॥

(मत्सपुराण)

सम्पत्तिके मदसे जो मनुष्य यान द्वारा तीर्थको जाता है, उसकी तीर्थ यात्रा निष्फल होती है, इस लिये तीर्थमें यानको छोड़ देना चाहिये ।

पुण्यार्द्धं हरते याने तदर्द्धं छत्रपादुके ।
तदर्धं तैलमांसाभ्यां सर्वं हरति मैथुने ॥

(कर्मलोचन)

यानसे तीर्थ जानेपर आधा पुण्य नष्ट होता है, छत्र पादुका लेनेपर उससे आधा, तैल मांस सेवन करनेपर उससे आधा और तीर्थमें मैथुन आचरणसे समस्त पुण्य नष्ट हो जाता है।

तत्र नारायणक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे हरेः पदे ।
वाराणस्यां वदर्य्यां च गंगासागरसंगमे ॥
एतेष्वन्येषु यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः ।
स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाकं प्रयाति च ॥

(ब्रह्मवैवर्त्त प्रकृति खण्ड)

नारायणक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, हरिपद, काशी, बद्रिनाथ, गङ्गासागर आदि तीर्थोंमें जो इच्छापूर्वक दान ग्रहण करता है, उस तीर्थ प्रतिग्राहीको कुम्भीपाक नरकमें जाना पड़ता है। इसलिये तीर्थमें दान लेना नहीं चाहिये। कहीं

कहीं ब्राह्मणके लिये जो दान लेना लिखा है उसमें महर्षि याज्ञवल्क्यकी आज्ञा है कि—

विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः।
गृह्णन् प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च ॥

विद्या तथा तपस्यासे हीन ब्राह्मणको कदापि दान नहीं लेना चाहिये। ऐसा करनेपर दाता, ग्रहीता दोनोंकी अधोगति होती है।

न तीर्थे पातकं कुर्यात् त्यजेत्तीर्थोपजीवनम्।
तीर्थे प्रतिग्रहस्त्याज्यस्त्याज्यो धर्मस्य विक्रयः ॥

(पद्मपुराण)

यदन्यत्र कृतं पापं तीर्थे तद्ध याति लाघवम्।
न तीर्थकृतमन्यत्र क्वचित् पापं व्यपोहति ॥

(पद्मपुराण)

तीर्थमें जाकर पाप नहीं करना चाहिये, तीर्थके अन्नसे जीविका नहीं करनी चाहिये, तीर्थ प्रतिग्रह और धर्मविक्रय दोनों ही त्याग देने योग्य हैं। अन्यत्र किया हुआ पाप तीर्थमें घट जाता है, किन्तु तीर्थमें किया हुआ पाप कहीं नहीं घटता है।

षोड़शांशं स लभते यः परार्थेन गच्छति।
अर्द्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति ॥
तीर्थं प्राप्य प्रसङ्गेन स्नानं तीर्थे समाचरेत्।
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राश्रितं न तु ॥

(काशीखण्ड)

दूसरेके लिये तीर्थ जानेपर सोलहवां अंश पुण्य मिलता है और किसी अन्य प्रसङ्गसे तीर्थमें आजाने पर आधा फल मिलता है। इस तरह प्रसङ्गतः जो तीर्थ स्नान करता है उसको स्नानका फल मिलता है, तीर्थ यात्राका नहीं।

तीर्थयात्रासमारम्भे तीर्थात् प्रत्यागमेऽपि च।
वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत बहुसर्पिःसमन्वितम् ॥

(कूर्मपुराण)

तीर्थोपवासः कर्त्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा।
शिरोगतानि पापानि यान्ति मुण्डनतो यतः॥
(काशीखण्ड)

तीर्थ जानेसे पहिले और तीर्थसे लौटकर विशेष घृत द्वारा वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये। तीर्थमें जाकर उपवास तथा केशमुण्डन कराना चाहिये, क्योंकि समस्त पाप केशको ही आश्रय करके रहता है। कहीं कहीं प्रयाग आदिके सिवाय अन्यत्र मुण्डनकी अनावश्यकता भी बताई गई है।

नरयानं चाश्वतरी हयादिसहितो रथैः।
तीर्थयात्रास्वशक्तानां यानं दोषकरं न हि॥
(कूर्मपुराण)

यानमर्द्धफलं हन्ति तदर्धं छत्रपादुके।
वाणिज्यं त्रींस्तथा भागान् सर्वं हन्ति प्रतिग्रहः॥

असमर्थके लिये किसी यान द्वारा तीर्थ यात्रामें दोष नहीं है। वे अश्वतरी, अश्व या आवश्यकतानुसार नरयानसे जा सकते हैं। यानमें जानेपर आधा फल नष्ट होता है, छाता जूता पहिननेमें उसका आधा, वाणिज्यके लिये जानेपर उसका तीन भाग और प्रतिग्रह करनेपर समस्त पुण्य नष्ट होता है।

तीर्थं गच्छन् त्यजेत् प्राज्ञः परान्नं परभोजनम्।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो ब्रह्मचारी भवेच्छुचिः॥
शुचिवस्त्रधरः स्नातो नित्यहानिं न कारयेत्।
गच्छेत्तीर्थं शनैर्विद्वान् सततं संयतेन्द्रियः॥
(भविष्ये)

नरकं दारुणं श्रुत्वा परान्ने तु रतिं त्यजेत्।
यो यस्यान्नमिहाश्नाति स तस्याश्नाति किल्विषम्॥
(पाद्मे)

तीर्थमें जाकर दूसरेके हाथका पकाया हुआ या दूसरेका दिया हुआ अन्न नहीं खाना चाहिये। सदा जितेन्द्रिय, जितक्रोध, ब्रह्मचारी और पवित्र

रहना चाहिये। पवित्र वस्त्रधारी, स्नानशील तथा संयतेन्द्रिय रहकर नित्यकर्म करते रहना चाहिये। जिसका अन्न खाया जाता है, उसका पापभक्षण भी किया जाता है ऐसा जानकर तीर्थमें पराम्न भोजन कदापि नहीं करना चाहिये।

मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः।
वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं गयाम्॥

(देवल)

उपवास और मुण्डन सभी तीर्थोंमें करना चाहिये। कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर और गयामें मुण्डनकी आवश्यकता नहीं होती।

गंगां प्राप्य सरिच्छ्रेष्ठां कम्पन्ते पापसंचयाः।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात्तान् परिवापयेत्॥
यावन्ति नखलोमानि गंगातोये पतन्ति वै।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

(गरुड़ पुराण)

देवनदी गङ्गाको पाकर पाप सब कांप उठते हैं और केश पकड़ कर रहते हैं, इसलिये गङ्गातीर्थमें केशमुण्डन कर देना चाहिये। गंगाजलमें जितने नख लोम गिरते हैं उतने हजार वर्ष तक तीर्थयात्रीको स्वर्गवास होता है।

तर्पणं पितृदेवानां श्राद्धधदानं सदक्षिणम्।
तीर्थे तीर्थे च गोदानं नियतः प्राकृतो विधिः॥

(देवल)

अकालेऽप्यथ वा काले तीर्थे श्राद्धं च तर्पणम्।
अविलम्बेन कर्त्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत्॥
यस्तु तीर्थे नरः स्नात्वा न कुर्यात् पितृतर्पणम्।
पिबन्ति देहनिस्रावं पितरस्तु जलार्थिनः॥

(स्कन्दपुराण)

प्रत्येक तीर्थमें जानेपर पितृतर्पण, देवतर्पण, श्राद्ध, दान और गोदान करना होता है यह नैसर्गिक नियम है। उत्तम काल या अकाल सभी समय तीर्थमें श्राद्ध, तर्पण करना चाहिये, इसमें किसी प्रकार विघ्न नहीं डालना

चाहिये। जो व्यक्ति तीर्थमें स्नान करके पितृतर्पण नहीं करता है, जलाकाङ्क्षी पितृगण उसके देहनिस्रावको पीते हैं, जिससे उसको बड़ा पाप लगता है। इस प्रकारसे आर्यशास्त्रमें तीर्थकर्त्तव्यके विषयमें बहुत कुछ बताया गया है।

पृथिवीके साथ देवादिदेव महादेवका अधिदैव सम्बन्ध है। कपिलतन्त्रमें—

नभसोऽधिपतिर्विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

इस प्रमाणके द्वारा आकाशतत्त्वके साथ विष्णुका, अग्नितत्त्वके साथ देवीका, वायुतत्त्वके साथ सूर्य देवका, जलतत्त्वके साथ गणपतिका और पृथिवी तत्त्वके साथ महादेवका अधिदैवसम्बन्ध बताया गया है। तदनुसार पृथिवीकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु देवतात्मा हिमालयमें शिवका निवास और हिमालयदुहिता सती पार्वतीको शिवकी शक्ति कहा गई है। यही कारण है कि पृथिवीकी सर्वश्रेष्ठ दैवीभूमि भारतवर्षमें शिव तथा पार्वतीकी साक्षात् शक्तिसे पूर्ण अनेक तीर्थ देखनेमें आते हैं जिनको आर्यशास्त्रमें ज्योतिर्लिङ्ग और पीठ कहा गया है। शिवलिङ्ग अनन्त किन्तु ज्योतिर्लिङ्ग द्वादश ही हैं। उनके विषयमें शिवपुराणमें लिखा है—

विवादशमनार्थं च प्रबोधार्थं द्वयोरपि।
ज्योतिर्लिङ्गं तदोत्पन्नमावयोर्मध्यमद्भुतम्॥
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलचयोपमम्।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम्॥

शिवपुराण, ज्ञान सं०।

ब्रह्मा और विष्णुके विरोध दूर करनेके लिये कालानलतुल्य ज्योतिर्लिङ्ग प्रकट हुआ। उसकी मूर्त्ति सहस्र सहस्र अग्निज्वालासे व्याप्त थी। वह क्षय, वृद्धि, आदि, अन्त, मध्य रहित था। यही ज्योतिर्लिङ्ग भारतके द्वादश स्थानमें भिन्न भिन्न नामसे विराजमान हैं। यथा—सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन, उज्जैनमें महाकाल, नर्मदातीर अमरेश्वरमें ॐकारनाथ, हिमालयमें केदारनाथ, डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वेश्वर, गोमती तीरमें त्र्यम्बक, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, द्वारकामें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश और शिवालयमें घृष्णेश्वर हैं, इनके दर्शन तथा पूजनसे सद्योमुक्ति लिखी है।

पीठके विषयमें देवीभागवत, कालिका पुराण, तन्त्रचूड़ामणि आदि ग्रन्थोंमें बहुत कुछ प्रमाण मिलता है। मन्त्रसिद्धिके निमित्त जपस्थान विशेषको पीठ कहते हैं। अर्थात् जिस स्थान विशेषमें मन्त्रजप, अनुष्ठान, पुरश्चरण आदिके करनेसे शीघ्र फलप्राप्ति होती है, उसे पीठ कहा जाता है। पीठ कितने प्रकारके होते हैं, इस विषयमें युक्तिकल्पतरुमें लिखा है:—

धातुपाषाणकाष्ठैश्च पीठस्त्रिविध उच्यते।
धातवश्च शिलाश्चैव काष्ठानि विविधानि च॥

धातु, शिला व काष्ठ तीन प्रकारके पीठ होते हैं। धातुपीठोंमें लोहेके पीठ निन्दनीय हैं। शिलापीठोंमें शार्कर तथा कर्करपीठ वर्जनीय हैं। काष्ठपीठोंमें सारहीन या अत्यन्त सारवान् पीठ अप्रशस्त है। भोजके मतमें गुरुपीठ गौरवजनक और लघुपीठ लघुताजनक है। शक्तिपीठोंके विषयमें देवीभागवत ७।३० में लिखा है—

अपश्यत्तां सतीं वह्नौ दह्यमानान्तु चित्कलाम्।
स्कन्धेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन् मुहुः॥
बभ्राम भ्रान्तचित्तः सन्नानादेशेषु शंकरः।
तदा ब्रह्मादयो देवाश्चिन्तामापुरनुत्तमाम्॥
विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः।
चिच्छेदावयवान् सत्यास्तत्तत् स्थानेषु तेऽपतन्॥
तत्तत् स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्त्तिधरो हरः।
उवाच च ततो देवान् स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम्॥
भजन्ति परया भक्त्या तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम्।
नित्यं सन्निहिता यत्र निजाङ्गेषु पराम्बिका॥
स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरणकर्मिणः।
तेषां मन्त्राः प्रसिध्यन्ति मायाबीजं विशेषतः॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः।
कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः॥

दक्ष यज्ञमें पिता प्रजापति दक्षके मुखसे पति शिवकी निन्दा सुनकर सती पार्वतीने योगाग्नि द्वारा अपने शरीरको दग्ध कर डाला। जलते हुए सती शरीरको शंकरने अपने कन्धेमें रखकर सर्वत्र घूमना शुरू किया जिससे देवताओंको बड़ी चिन्ता लगी। इतनेमें भगवान् विष्णुने बाण द्वारा सती देहको खण्ड-खण्ड कर दिया। उनका अङ्ग प्रत्यङ्ग भारतके अनेक स्थानोंमें जा गिरा। श्रीभगवान् शंकर उन सब स्थानोंमें स्वयं जाकर रहने लगे और देवताओंसे उन्होंने कहा कि उन स्थानोंमें भक्तिपूर्वक जो भगवती शिवाकी उपासना करेगा, उसको संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा। क्योंकि उन सब अङ्गोंमें स्वयं पार्वती विराजमान हैं। उन स्थानोंमें पुरश्चरण और खास करके मायाबीजका जप करनेपर मन्त्र सिद्धि अवश्य होगी। भगवान् शंकरने इतना कहकर स्वयं भी उन्हीं स्थानोंमे जप ध्यान समाधि द्वारा कालक्षेप करना प्रारम्भ किया। इस प्रकारसे देवी भागवतमें पीठोत्पत्तिका रहस्य बताया गया है। और १०८ देवीपीठका वर्णन किया गया है। तन्त्र चूड़ामणिमें ५१ पीठका वर्णन मिलता है और कहीं कहीं ७१ पीठका भी उल्लेख है। इन सब विभिन्न मतोंका सामञ्जस्य करके 'शिव चरित्र' नामक ग्रन्थमें निम्नलिखित ५१ महापीठ और २६ उपपीठोंका वर्णन है। यथा—

महापीठ।

अङ्गका नाम	स्थान	देवी	भैरव
ब्रह्मरन्ध्र	हिङ्गुला	काहरी	भीमलोचन
त्रिनेत्र	सर्कर	महिष-मर्दिनी	क्रोधीश
नेत्रांशतारा	तारा	तारिणी	उन्मत्त
वामकर्ण	करतोयातट	अपर्णा	वामेश
दक्षिण कर्ण	श्रीपर्वत	सुन्दरी	सुन्दरानन्द
नासिका	सुगन्धा	सुनन्दा	त्र्यम्बक
मनः	वक्रनाथ	पापहरा	वक्रनाथ
वामखण्ड	गोदावरी	विश्वमात्रिका	विश्वेश
दक्षिणखण्ड	गण्डकी	गण्डकीचण्डी	चक्रपाणि
ऊर्द्ध्वदन्त	अनल	नारायणी	संक्रूर
अधोदन्त	पञ्चसागर	वाराही	महारुद्र

जिह्वा	ज्वालामुखी	अम्बिका	वटकेश्वर
कण्ठ	काश्मीर	महामाया	त्रिसन्ध्य
ग्रीवा	श्रीहट्ट	महालक्ष्मी	सर्वानन्द
ओष्ठ	भैरव पर्वत	अवन्ती	नम्रकर्ण
अधर	प्रभास	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड
मर्म	प्रभासखण्ड	सिद्धेश्वरी	सिद्धेश्वर
चिवुक	जनस्थान	भ्रामरी	विकृताक्ष
द्विहस्ताङ्गुलि	प्रयाग	कमला	वेणीमाधव
वामहस्त	ज्ञानसरोवर	दाक्षायणी	हर
दक्षिण हस्तादूर्ध्व	चट्टग्राम	भवानी	चन्द्रशेखर
वामस्कन्ध	मिथिला	महादेवी	महोदर
दक्षिणस्कन्ध	रत्नावली	शिवा	शिव
वाममणिवन्ध	मणिवन्ध	गायत्री	शंकर
दक्षिणमणिबन्ध	मणिवेद	सावित्री	स्थाणु
वामहस्तकी पड़ि	उजानि	मंगलचण्डी	कपिलाम्बर
दक्षिणहस्तकी पड़ि	रणखण्ड	बहुलाक्षी	महाकाल
वामबाहु	बहुला	बहुला	भीरुक
दक्षिणबाहु	वक्रेश्वर	वक्रेश्वरी	वक्रेश्वर
वामस्तन	जालन्धर	त्रिपुरमालिनी	भीषण
दक्षिणस्तन	रामगिरि	शिवानी	चण्ड
पृष्ठ	वैवस्वत	त्रिपुटा	शमनकर्मा
हृदय	वैद्यनाथ	नवदुर्गा	वैद्यनाथ
नाभि	उत्कल	विजया	जय
जठर	हरिद्वार	भैरवी	वक्र
कुक्षि	कोंकामुख	कोंकेश्वरी	कोंकेश्वर
कुक्षिका ऊपरभाग	काञ्ची	वेदगर्भा	रुरु
वामनितम्ब	कालमाधव	काली	असितांग
दक्षिणनितम्ब	नर्मदा	सोणाक्षी	भद्रसेन
महामुद्रा	कामरूप	कामाख्या	उमानन्द
वामजानु	मालव	शुभचण्डी	ताम्र

दक्षिणजानु	त्रिस्रोता	चण्डिका	सदानन्द
वामजङ्घा	जयन्ती	जयन्ती	क्रमदीश्वर
दक्षिणजङ्घा	नेपाल	महामाया	कपाली
वामपद	तिर्हुत	भ्रमरी	भ्रमर
दक्षिणपद	त्रिपुरा	त्रिपुरा	नल
दक्षिणपदांगुष्ठ	क्षीरग्राम	योगाद्या	क्षीरखण्ड
दक्षिण पदाङ्गुलि	कालीघाट	कालिका	नकुलेश
वामगुल्फ	विभास	भीमरूपा	कापाली
दक्षिणगुल्फ	कुरुक्षेत्र	सम्वरी	सम्वर्त्त
वामपदांगुलि	विन्ध्याचल	विन्ध्यवासिनी	पुण्यभाजन

उपपीठ ।

किरीट	किरीटकाणा	भुवनेशी	किरीटी
केश	केशजाल	उमा	भूतेश
कुण्डल	वाराणसी	अन्नपूर्णा	विश्वेश्वर
वामगण्डांश	उत्तरा	उत्तरिणी	उत्सादन
दक्षिणगण्डांश	नलस्थान	भ्रमरी	विरूपाक्ष
ओष्ठांश	अट्टहास	फुल्लरा	विश्वनाथ
दन्तांश	संहर	शूरेशी	शूरेश
उच्छिष्ट	नीलाचल	विमला	जगन्नाथ
कण्ठहार	अयोध्या	अन्नपूर्णा	हरिहर
हारांश	नन्दीपुर	नन्दिनी	नन्दीश्वर
ग्रीवांश	श्रीशैल	सर्वेश्वरी	चर्चितानन्द
शिरोंऽश	कालीपीठ	चण्डेश्वरी	चण्डेश्वर
अस्त्र	चक्रद्वीप	चक्रधारिणी	शूलपाणि
पाणिपद्म	यशोर	यशोरेश्वरी	प्रचण्ड
करांश	सतीचल	सुनन्दा	सुनन्द
स्कन्धांश	वृन्दावन	कुमारी	कुमार
वसा	गौरीशेखर	युगाद्या	भीम
शिरानलि	नलहाटि	सेफालिका	योगीश
कक्षांश	सर्वशैल	विश्वमाता	दण्डपाणि

नितम्बांश	शोण	भद्रा	भद्रेश्वर
पदांश	त्रिस्रोता	पार्वती	भैरवेश्वर
नूपुर	लंका	इन्द्राक्षी	रक्षेश्वर
चर्मांश	कटक	कटकेश्वरी	वामदेव
रोम	पुण्ड्र	सर्वाक्षीणी	सर्व
रोमखण्ड	तैलङ्ग	चण्डदायिका	चण्डेश
भग्नांश	श्वेतवन्ध	जया	महाभीम

ये ही ५१ महापीठ तथा २६ उपपीठोंके नाम हैं। इनमें दान, जप, होम आदि करनेसे अक्षयपुण्यलाभ होता है।

इसके सिवाय दैवभूमि भारतवर्षके और भी अनेक स्थानोंमें शिव शक्तिके कई एक उपासना पीठ शास्त्रमें बताये गये हैं। यथा—कुब्जिका तन्त्र ७ प०—

स्थान	देवी	शिव
अमरेश	चण्डिका	कुशतुंगार
प्रभास	पुष्करेक्षणा	सोमनाथ
निमिष	शिवानी	महेश्वर
पुष्कर	पुरहूता	राजगन्धि
श्रीपर्वत	मायावी	त्रिपुरान्तक
जल्पेश्वर	त्रिशूलिनी	त्रिशूली
आम्रातकेश्वर	सूक्ष्मा	सूक्ष्म
गणक्षेत्र	मङ्गला	प्रपितामह
कुरुक्षेत्र	स्थाणुप्रिया	स्थाणु
इष्टनाभ	स्वायम्भुवा	स्वयम्भू
कनखल	शिववल्लभा	उग्र
अट्टहास	महानन्दा	महानन्द
विमलेश्वर	विश्वप्रिया	विश्वशम्भू
महेन्द्र	महान्तका	महान्तक
भीमपीठ	भीमेश्वरी	भीमेश्वर
वस्त्रापथ	भुवनेश्वरी	भव
अद्रिकूट	रुद्राणी	महायोगी
अविमुक्त	विशालाक्षी	महादेव

महामाया	महाभागा	रुद्र
गोकर्ण	शिवभद्रा	महाबल
भद्रकर्ण	कर्णिका	महादेव
सुपर्ण	उत्पला	सहस्राक्ष
स्थाणुपीठ	श्रीधरा	स्थाणु
कमलालयपीठ	कमलाक्षी	कमल
अरण्य	सन्ध्या	ऊर्द्ध्वरेता
माकोट	मुण्डकेश्वरी	महाकोट

ये सभी पीठ उपासना करनेपर परमसिद्धिप्रद हैं। पृथिवीतत्त्वके अधिदैव शिव भगवान्के होनेके कारण पृथिवी और विशेषकर भारतवर्ष इस प्रकारसे शिवशक्तिमण्डित है।

अब कुछ महातीर्थोंके वर्णन किये जाते हैं-भारतवर्षमें सर्वप्रधान महातीर्थ काशी है। वाराणसी, वराणसी, वरणसी, तीर्थराज्ञी, तपस्थली, काशिका, अविमुक्त, आनन्दवन, आनन्दकानन, अपुनर्भवभूमि, रुद्रावास, महाश्मशान ये सब काशीके पर्यायशब्द हैं। इन नामोंमेंसे काशी, अविमुक्त और वाराणसी ये तीन नाम ही सबसे प्राचीन हैं।

कर्मणां कर्षणात्सा वै काशीति परिकथ्यते ।

शिव० पु० ज्ञानसंहिता ।

यहां पर शुभाशुभ कर्म नष्ट होकर मोक्षलाभ होता है, इसलिये इसका नाम काशी है।

काशतेऽत्र यतो ज्योतिस्तदनाख्येयमीश्वर ।
अतो नामापरं चास्तु काशीति प्रथितं विभो ॥

काशी० खं० २६-२७

वाक्यसे अगोचर परम ज्योति यहां पर प्रकाशित होती है, इस लिये इसको काशी कहते हैं।

विमुक्तं न मया यस्मान् मोक्षते वा कदाचन ।
मम क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम् ॥

लिङ्ग पु० ६२-४५

इस स्थानको भगवान् शंकर न कदापि परित्याग करते हैं और न करेंगे, इस लिये इसका नाम अविमुक्त है।

भूर्लोके नैव संलग्नमन्तरिक्षे ममालयम्।
अविमुक्ता न पश्यन्ति मुक्ता पश्यन्ति चेतसा।
श्मशानमेतद्ध विख्यातमविमुक्तमिति स्मृतम्॥

कूर्म० पु० ३०।२६-२७।

भूर्लोकके साथ असंलग्न, अन्तरिक्षमें स्थित मेरे इस निवासस्थानको अविमुक्त संसारी जीव नहीं देख सकता है, मुक्तात्मागण मानसनेत्रसे देख सकते हैं, इस कारण इस महाश्मशानको 'अविमुक्त' कहा गया है। शुक्लयजुर्वेदीय शतपथब्राह्मणमें काशी शब्दका उल्लेख मिलता है यथा—'अतः काशयोऽग्निना दत्तम्।' 'यज्ञं काशीनां भरतः सात्वतामिव' १३-५-४।१६।४२१ कौषीतकी उपनिषद् ३-१-५-१ तथा रामायण किष्किन्धा काण्ड ४०-२२ में काशीको बड़ा भारी जनपद तथा पवित्र यज्ञभूमि करके बताया गया है। रामायणके उत्तरकाण्डमें भी प्रमाण मिलता है यथा—

तं विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम्।
प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत्॥
उद्योगश्च त्वया राजन् भरतेन कृतः सह।
तद्भवानद्य काशेयपुरीं वाराणसीं व्रज॥
रमणीयां त्वया गुप्तां सुप्राकारां सुतोरणाम्॥

उ० का० ४।१५-१७।

श्रीभगवान् रामचन्द्रने काशीराज प्रतर्दनसे कहा "आपने भरतके साथ इन्तजाम कर लिया है, इसलिये आज अपनी तोरण प्राकार मण्डित रमणीय वाराणसीपुरीमें जाइये।"

और भी उत्तरकाण्ड-६६।१८-१६ में—

त्रिदिवं स गतो राजा ययातिर्नहुषात्मजः॥
पूरुश्चकार तद्राज्यं धर्म्मेण महताव्रतः।
प्रतिष्ठाने पुरवरे काशिराज्ये महायशाः॥

नहुषात्मज राजा ययातिके स्वर्गवासी हो जानेपर परम धार्मिक पूरु राजाने महतीपुरी काशीमें राज्य किया। इस प्रकार काशी तथा अविमुक्त दोनों नाम शास्त्रमें पाये जाते हैं। 'वाराणसी' नामके विषयमें जावालोपनिषद्में लिखा है—

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे, येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति, तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत, अविमुक्तं न विमुञ्चेत् एवमेवैतद्व याज्ञवल्क्य! सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति। वरणायां नाश्यां च मध्ये प्रतिष्ठित इति। का वै वरणा का च नाशीति। सर्वानिन्द्रियकृतान् दोषान् वारयतीति तेन वरणा भवतीति। सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् नाशयतीति तेन नाशी भवतीति।

यहांपर जीवोंके मृत्यु समय रुद्रदेव कानमें 'तारकब्रह्म' मन्त्र कह देते हैं जिससे जीवको मोक्ष हो जाता है। अतः अविमुक्त वाराणसीका ही सेवन करना चाहिये; इसे छोड़ना नहीं चाहिये। यह अविमुक्त कहांपर है? वरणा और नाशी इन दोनों नदियोंके बीचमें है। समस्त इन्द्रियकृत दोष दूर करती है इसलिये 'वरणा' नाम है और समस्त इन्द्रियकृत पाप नष्ट करती है इसलिये 'नाशी' नाम है। और भी काशी-खण्ड ३०।६९–७० में—

असिश्च वरणा यत्र क्षेत्ररक्षाकृतौ कृते।
वाराणसीति विख्याता तदारभ्य महामुने।
असेश्च वरणायाश्च संगमं प्राप्य काशिका॥

सत्ययुगमें इस काशी क्षेत्रकी रक्षाके लिये वरणा और असिकी उत्पत्ति हुई है। तभीसे असि तथा वरणाके नामसे काशी वाराणसी कहलाती है। काशीखंड ५।२४-२९ में वाराणसीका यौगिक रहस्य पूर्ण अर्थ भी बताया गया है, यथा—

क्षेत्रं पवित्रं हि यथाऽविमुक्तं—
नान्यत्तथा यच्छ्रुतिभिः प्रयुक्तम्।
न धर्मशास्त्रैर्न च तैः पुराणै—
स्तस्माच्छरण्यं हि सदा विमुक्तम्॥

सहोवाचेति जावालिरारुणेऽसिरिड़ा मता।
वरणा पिंगला नाड़ी तदन्तस्त्वविमुक्तकम् ॥
सा सुषुम्ना परा नाड़ीत्रयं वाराणसी त्वसौ।
तदत्रोत्क्रमणे सर्वजन्तूनां हि श्रुतौ हरः ॥
तारकं ब्रह्म व्याचष्टे तेन ब्रह्म भवन्ति हि।
एवं श्लोको भवत्येष आहुर्वै वेदवादिनः ॥
नाविमुक्तसमं क्षेत्रं नाविमुक्तसमा गतिः।
नाविमुक्तसमं लिङ्गं सत्यं-सत्यं पुनः पुनः ॥

काशी जैसा पवित्रक्षेत्र और कोई भी नहीं है, इसको केवल धर्मशास्त्र तथा पुराणने ही नहीं कहा है. अधिकन्तु वेदमें भी यही कहा गया है. इसलिये अविमुक्त क्षेत्रकी ही शरण लेनी चाहिये। मुनिवर जावालिने अपने शिष्य आरुणिसे कहा है—इड़ा नाड़ी असि, पिङ्गला वरणा और इन दोनोंके मध्यमें स्थित सुषुम्ना नाड़ी अविमुक्त क्षेत्र। इस तरहसे योगनाड़ीत्रय ही वाराणसी है। वाराणसीमें प्राणत्याग होते समय भगवान् शिव दक्षिण कर्णमें 'तारक-ब्रह्म' नाम सुनाते हैं, जिससे जीवको ब्रह्म स्वारूप्य लाभ होता है। इस विषयमें वेदवक्ता पण्डितोंने यही श्लोक कहा है कि अविमुक्तके समान क्षेत्र नहीं है, अविमुक्तके समान गति नहीं है, अविमुक्तके समान लिङ्ग नहीं है, यही निश्चित सत्य है।

'कलौ विश्वेश्वरो देवः कलौ वाराणसी पुरी।'

३१।२५।

कलियुगमें विश्वेश्वर ही श्रेष्ठतम देवता और वाराणसी ही श्रेष्ठतम पुरी है। यही अति प्राचीन काशी, अविमुक्त और वाराणसी नामत्रयकी सार्थकता है।

आर्यशास्त्रमें काशी महातीर्थकी सर्वोत्तम प्रशंसा की गई है। लिखा है—

धर्मस्योपनिषत् सत्यं मोक्षस्योपनिषच्छमः।
क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं विदुर्बुधाः ॥

शिव० पु० ज्ञानसंहिता ४९-६३।

धर्मका सर्वोत्तम रहस्य सत्य है, मोक्षका सर्वोत्तम रहस्य शम है और

क्षेत्र तीर्थका सर्वोत्तम रहस्य अविमुक्त वाराणसी है। काशीखण्डके २२ वें अध्यायमें लिखा है—

अविमुक्तान्महाक्षेत्राद्विश्वेशसमधिष्ठितात् ।
न च किञ्चित् क्वचिद्‌ रम्यमिह ब्रह्माण्डगोलके ॥
ब्रह्माण्डमध्ये न भवेत् पंचक्रोशप्रमाणतः ॥
यथा यथा हि वर्द्धेत जलमेकार्णवस्य च ।
तथा तथोन्नयेदीशस्तत्क्षेत्रं प्रलयादपि ॥
क्षेत्रमेतत् त्रिशूलाग्रे शूलिनस्तिष्ठति द्विज ।
अन्तरिक्षे न भूमिष्ठं नैक्षन्ते मूढबुद्धयः ॥

विश्वेश्वरकी निवासभूमि पञ्चक्रोशपरिमित इस अविमुक्त महाक्षेत्रकी अपेक्षा रम्यस्थान ब्रह्माण्डमें कहीं भी नहीं है। खण्डप्रलयमें जितना जितना जल बढ़ता है, महादेव उतना ही इसको ऊंचा करके प्रलयपयोधिजलसे बचा रखते हैं। यह स्थान अन्तरिक्षमें शिवत्रिशूलके ऊपर है, पृथिवीमें स्थित नहीं है, इसको मूढ़ बुद्धि लोग जान नहीं सकते।

प्रयागे वा भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ।
प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादविमुक्तमिदं शुभम् ॥

लिङ्ग पु० ९२ अ०।

शिवभगवान्‌के अधिष्ठान हेतु प्रयाग, काशी दोनों ही स्थानोंमें मोक्षलाभ होता है, किन्तु प्रयागसे भी काशी श्रेष्ठतर है।

जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत् सर्वं व्रजति क्षयम् ॥

मत्स्य पु०।

पूर्वसञ्चित हजार जन्मोंके पाप भी काशीप्रवेशमात्रसे नष्ट हो जाते हैं।

बहुनात्र किमुक्तेन वाराणस्या गुणान् प्रति ।
नामापि गृणतां काश्याश्चतुर्वर्गो न दूरतः ॥

नारदीय पु०।

वाराणसीका गुण अधिक क्या कहा जाय, इसके नाम मात्रके उच्चारणसे चतुर्वर्ग फल मिलता है।

काशी काशीति काशीति रसना रससंयुता।
यस्य कस्यापि भूयाच्चेत् स रसज्ञो न चेतरः॥

स्कन्दपु०।

जिसकी रसनापर मधुर 'काशी' इस नामका रस है, वही रसज्ञ है।

त्रिरात्रमपि ये काश्यां वसन्ति नियतेन्द्रियाः।
तेषां पुनन्ति नियतं स्पृष्टाश्चरणरेणवः॥
यावज्जीवं वसेद्‌ यस्तु क्षेत्रमाहात्म्यविन्नरः।
जन्ममृत्युभयं हित्वा स याति परमां गतिम्॥

(काशीखण्ड)

जितेन्द्रियताके साथ तीन रात्रि जो काशीवास करता है उसकी चरण-धूलिसे संसार पवित्र होता है। काशीक्षेत्रकी महिमा जानकर जो यावज्जीवन काशीवास करता है, उसको जन्ममृत्युभयरहित परम गतिकी प्राप्ति होती है।

काशीमें मृत्यु होनेसे मुक्ति होती है, तो क्या काशीमें आनेसे पूर्व जिसने पाप किया है या काशीमें रहकर भी जिसने पाप किया है सभीको मुक्ति मिल जायगी? जब 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इस वेदप्रमाणके अनुसार ज्ञान विना मुक्ति नहीं होती है, तो ज्ञानविहीन या अज्ञानी पापी काशीवासी होनेपर भी कैसे मुक्त हो सकते हैं यह विषय अवश्य विचारने योग्य है। अब नीचे इस विषयमें कुछ विचार किया जाता है। काशीखण्डमें लिखा है—

विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः।
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारं न विशेत् पुनः॥
तत्रोत्क्रमणकाले तु साक्षात् विश्वेश्वरः स्वयम्।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म येनासौ तन्मयो भवेत्॥

विषयमें आसक्तचित्त, धर्ममें रतिहीन मनुष्य भी यदि काशीमें मरे तो उसे पुनः संसारमें आना नहीं पड़ेगा। क्योंकि यहांपर प्राणत्यागके समय स्वयं विश्वेश्वर मुमुर्षुके कानमें 'तारकब्रह्म' नाम सुनाते हैं, जिससे तन्मयता होकर पाप कटता है और मोक्ष मिलता है। यह दोनों काशीमें मुक्तिके विषयमें साधारण श्लोक हैं। विशेष विवेचन मेंपद्मपुराणका वचन है यथा—

अविमुक्ते कृतं पापं वज्रलेपी भवेद्ध दृढ़म् ।
वज्रलेपेन पापेन तेन मे जन्म राक्षसम् ॥
'अविमुक्तेऽणुमात्रं हि तत्पापं मेरुतां व्रजेत् ।'
पञ्चक्रोशीं प्रविशतस्तस्य पातकसन्ततिः ।
बहिरेव प्रतिष्ठेत नान्तर्निविशते क्वचित् ॥

(काशी खण्ड)

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति ।
काशीक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपं भविष्यति ॥

म० तन्त्र,

काशीमें किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है, इसी कारण एक मनुष्यको राक्षसयोनिमें जाना पड़ा, ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है। यहांका अणुमात्र पाप भी मेरुतुल्य विशाल हो जाता है। काशीखण्डमें लिखा है पञ्चक्रोशीके भीतर प्रवेश करते समय पाप बाहर ही रह जाता है, भीतर घुसने नहीं पाता। इस कारण अन्यत्रका पाप काशीक्षेत्रमें नष्ट हो जाता है, किन्तु काशीमें अनुष्ठित पाप वज्रलेप हो जाता है। इसीलिये और भी काशीखण्डमें लिखा है—

अन्यत्र यत्कृतं पापं तत् काश्यां परिणश्यति ।
न कल्पकोटिभिः काश्यां कृतं कर्म प्ररुध्यते ।
किन्तु रुद्रपिशाचत्वं जायते निरयत्रयम् ॥

अन्यत्र किया हुआ पाप काशीमें नष्ट हो जाता है। किन्तु काशीमें किया पाप कोटिकल्पमें भी नष्ट नहीं होता है, रुद्र पिशाचकी योनि और तीन नरक प्राप्त होते हैं।

पद्मपुराणमें इसका दृष्टान्त यथा—

अथ शूद्रशरीरं तु दध्रे नाम्ना क्रमेलकः ।
ततो भैरवदूतैस्तैः स नीतो भैरवाग्रतः ।
कालभैरवं दृष्ट्वैव रुद्रपैशाच्यमाप्तवान् ।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि क्षुत्तृष्णाभ्यां विर्जितवः ॥

काशीमें पाप करनेसे अनेक योनियोंमें दुःख भोगके बाद क्रमेलकको शूद्र-योनि प्राप्त हुई। तदनन्तर भैरवदूतगण उसको कालभैरवके पास लाये। कालभैरवको देखकर उसे तीस हजार वर्ष तक रुद्रपिशाच योनिमें रहना पड़ा। इसी कारण काशीखण्डमें उपदेशवाक्य है यथा—

तत्र पापं न कर्त्तव्यं दारुणा रुद्रयातना ।
अहो रुद्रपिशाचत्वं नरकेभ्योऽपि दुःसहम् ॥
पापमेव हि कर्त्तव्यं मतिरस्ति यदीदृशी ।
सुखेनान्यत्र कर्त्तव्यं मही ह्यस्ति महीयसी ॥
परापवादशीलेन परदाराभिलाषिणा ।
तेन काशी न संसेव्या क्व काशी नियमः क्व सः ॥
अभिलष्यन्ति ये नित्यं धनं चात्र परिग्रहैः ।
परस्वं कपटैर्वापि काशी सेव्या न तैर्नरैः ॥
त्यक्त्वा वैश्वेश्वरी भक्तिं येऽन्यदेवपरायणाः ।
सर्वथा तैर्न वस्तव्या राजधानी पिनाकिनः ॥
अन्नार्थिनस्तु ये विप्रा ये च कामार्थिनो नराः ।
अविमुक्तं न तैः सेव्यं मोक्षक्षेत्रमिदं यतः ॥
शिवनिन्दापरा ये च वेदनिन्दापराश्च ये ।
वेदाचारप्रतीपा ये सेव्या वाराणसी न तैः ।
परद्रोहधियो ये च परेर्ष्याकारिणश्च ये ।
परोपतापिनो ये वै तेषां काशी न सिद्धये ॥

काशीमें कदापि पाप नहीं करना चाहिये। क्योंकि रुद्रयातना बड़ी भयानक तथा नरक यातनासे भी दारुण है। यदि पाप करनेकी इच्छा ही है तो विशाल पृथिवी पड़ी हुई है, अन्यत्र जहां चाहे सुखसे पाप करे, किन्तु काशीमें आकर पाप नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य परनिन्दा तथा परनारीमें आसक्ति रखता है उसको काशीमें रहना नहीं चाहिये। क्योंकि काशीवासके नियमसे यह विरुद्ध है। जो प्रतिग्रह द्वारा धनसंग्रह अथवा कपटसे परधनहरण करना चाहता है उसको काशीमें नहीं रहना चाहिये। जो विश्वेश्वरकी भक्ति छोड़कर

सामान्य देवतामें रति रखता है, उसको भी शिवपुरीमें निवास नहीं करना चाहिये। अन्नार्थी विप्र या कामार्थी मनुष्यको अविमुक्तपुरीमें नहीं रहना चाहिये, क्योंकि यह मोक्षपुरी है। जो शिव निन्दा या वेद निन्दा करता है और वेद मार्गसे उल्टा चलता है उसको वाराणसी सेवन नहीं करना चाहिये। दूसरेके साथ द्रोह करनेवाले, ईर्ष्या करनेवाले या दूसरेको दुःख देनेवाले मनुष्योंको काशीमें सिद्धिलाभ नहीं होता है।

अब विचारकी बात यह है कि, 'काश्यां मरणान्मुक्तिः' इस आज्ञाकी सार्थकता अज्ञानी, पापी काशीवासीके लिये कैसे होगी। इस विषयमें शास्त्रमें लिखा है—

यानि चेह प्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालयाः।
नाशयेत्तानि सर्वाणि देवः कालतनुः शिवः॥

(कूर्म पु०)

कृत्वापि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत्।
भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनर्मुक्तिमवाप्स्यति॥

(काशीखण्ड)

वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतः सदा।
योनिं प्रविश्य पैशाचीं वर्षाणामयुतत्रयम्॥
पुनरेव च तत्रैव ज्ञानमुत्पद्यते ततः।
मोक्षं गमिष्यते सोऽपि गुह्यमेतत् खगाधिपः॥
"अधर्मिष्ठस्य तत्क्षेत्रे यातनान्ते दिशेन्मतिम्।"

(गरुड़ पुराण)

काशीमें रह कर जो कुछ पाप किया जाता है, उसके दण्डदाता यमराज नहीं हैं, किन्तु स्वयं कालतनु शिव हैं। वे पापीको मरणके बाद रुद्र-पिशाच योनिमें या अत्यधिक पाप हो तो अन्यान्य अधमयोनिमें डालते हैं। इस प्रकारसे वर्षों दुःखभोग या रुद्र यातना भोगके बाद पापीकी बुद्धि ठिकाने पर आती है। तब उसमें पुण्य तथा ज्ञानका संचार होने लगता है। वही ज्ञान बढ़ता हुआ अनुकूल कालमें उसको पुनः काशीमें जन्म दिलाता है। तब ज्ञान परिपाकके समय 'तारक ब्रह्म' नाम विश्वेश्वर उन्हें देते हैं, जिससे मर-

णान्तर मुमुक्षुको मोक्ष मिल जाता है। इस प्रकारसे 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' और 'काश्यां मरणान्मुक्तिः' इन दोनों वाक्योंकी एकता श्रीभगवान् भवानीपतिकी कृपासे हो जाती है।

अब काशीमें मोक्षलाभके लिये विश्वेश्वरके अतिरिक्त और कौन्-कौन् दिव्य शक्तिमयी वस्तुओंसे सहायता मिलती है, उसका वर्णन किया जाता है। काशीखण्डमें लिखा है—

कामप्रदानि तीर्थानि त्रैलोक्ये यानि कानिचित्।
तानि सर्वाणि सेवन्ते काश्यामुत्तरवाहिनीम्॥
स्वः सिन्धुः सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी।
काश्यां विशेषतो विष्णो! यत्र चोत्तरवाहिनी॥
गायन्ति गाथामेतां वै देवर्षिपितरो गणाः।
अपि दृग्गोचरा नः स्यात् काश्यामुत्तरवाहिनी॥
गङ्गैव केवला मुक्त्यै निर्णीता परितो हरे!।
अविमुक्ते विशेषेण ममाधिष्ठानगौरवात्॥

बन्धनकी गति अनुलोम और मोक्षकी गति विलोम है। मोक्षमें जहांसे आये उसी ओर जाना पड़ता है। गङ्गा उत्तरसे आयी है, इसलिये जहांपर उत्तरवाहिनी होगी, वहीं उसकी विलोमगति कहलावेगी। यही कारण है कि, काशीकी गङ्गा मोक्षदायिनी, ज्ञानप्रवाहमयी है। त्रिलोकमें कामनानुसार फल देनेवाले जितने तीर्थ हैं वे सब काशीमें उत्तरवाहिनीकी ही सेवा करते हैं। गंगा दिव्य नदी होनेके कारण सर्वत्र ही पुण्यदायिनी तथा ब्रह्महत्यादि महापाप तकको नाशकारिणी है, किन्तु उत्तरवाहिनी होनेके कारण काशीमें उसकी विशेष महिमा है। ऋषि देवता पितृगण भी गङ्गाका महिमा कीर्त्तन करते हैं और उत्तरवाहिनीके दर्शन चाहते हैं। श्रीभगवान् शिवने भगवान् विष्णुसे कहा है कि, मुक्तिलाभके लिये गङ्गा ही प्रशस्त तीर्थ है और काशीक्षेत्रमें विश्वनाथका अधिष्ठान रहनेसे गङ्गाकी महिमा बहुत बढ़ गई है।

इसी तरह काशीमें मुक्तिलाभके लिये मणिकर्णिकाकी भी विशेष महिमा बताई गई है। मणिकर्णिकाकी उत्पत्तिके विषयमें शास्त्रमें लिखा है—

ततश्च विष्णुना दृष्ट्वा अहो किमेतदद्भुतम् ।
इत्याश्चर्यं तदा दृष्ट्वा शिरसः कम्पनं कृतम् ॥
ततश्च पतितः कर्णान्मणिश्च पुरतः प्रभोः ।
यत्रासौ पतितश्चैव तत्रासीन्मणिकर्णिका ॥

शिव० पु० ज्ञानसंहिता ४९।१०-१४ ।

संसारचिन्तामणिरत्र यस्मात्
तं तारकं सज्जनकर्णिकायाम् ।
शिवोऽभिधत्ते सहसान्तकाले
तद्गीयतेऽसौ मणिकर्णिकेति ॥
मुक्तिलक्ष्मीमहापीठमणिस्तच्चरणाब्जयोः ।
कर्णिकेयं ततः प्राहुर्यां जना मणिकर्णिकाम् ॥

(काशीखण्ड ७।७९-८०)

त्वदीयस्यास्य तपसो महोपचयदर्शनात् ।
यन्मयान्दोलितो मौलिरहिश्रवणभूषणः ॥
तदान्दोलनतः कर्णात् पपात मणिकर्णिका ।
मणिभिः खचिता रम्या ततोऽस्तु मणिकर्णिका ॥
चक्रपुष्करिणीतीर्थं पुरा ख्यातमिदं शुभम् ।
त्वया चक्रेण खननाच्छङ्खचक्रगदाधर ॥
मम कर्णात् पपातेयं यदा च मणिकर्णिका ।
तदाप्रभृति लोकेऽत्र ख्याताऽस्तु मणिकर्णिका ॥

काशीखण्ड (२६।६२-६५)

किसी समय श्रीभगवान् विष्णुने आश्चर्य होकर जब सिर हिलाया था, तब उनके कानसे एक मणि इस स्थानपर गिर गया। तबसे इस स्थानका नाम मणिकर्णिका हुआ है। संसारके चिन्तामणि विश्वनाथ जीवोंके अन्तकालमें इस स्थानपर उनके कर्णमें तारकब्रह्म नाम सुनाते हैं, इस कारण इसे मणिकर्णिका कहा जाता है। यह स्थान मुक्तिलक्ष्मीके महापीठके मणिस्वरूप तथा

उनके चरणकमलकी कर्णिकास्वरूप है, इस कारण इसका नाम मणिकर्णिका है। भगवान् महादेवने श्रीविष्णुसे कहा है;—"तुम्हारी विपुल तपस्याको देखकर विस्मयसे जब मैंने सिर हिलाया था, तब मेरे कानसे मणिजटित मणिकर्णिका नामक कर्णभूषण इस स्थानपर गिर पड़ा था। तुमने चक्रसे इसका खनन किया है, इस कारण पहिले इस तीर्थका नाम चक्रपुष्करणी था। जबसे मणिकर्णिका नामक आभूषण गिरा, तबसे इसका नाम मणिकर्णिका हुआ है।" इसकी महिमाके विषयमें काशीखण्डमें लिखा है:—

मुक्ताकुण्डलपातेन तवाद्रितनयाप्रिय।
तीर्थानां परमं तीर्थं मुक्तिक्षेत्रमिहास्ति वै॥
चक्रपुष्करणी तत्र योनिचक्रनिवारिणी।
संसारचक्रगहने यत्र स्नातो विशेन्न वा॥

भवानीवल्लभके मणिकुण्डल गिरनेसे यह स्थान परमतीर्थ मुक्तिक्षेत्र बन गया है। वहांपर जो चक्रपुष्करणी है, उसमें स्नान करनेसे विविधयोनि भ्रमणरूप संसारचक्रमें जीवको पुनः आना नहीं पड़ता है। पद्मपुराणमें लिखा है:—

विश्वेशो विश्वया सार्द्धं सदोपमणिकर्णिकम्।
मध्यन्दिनं समासाध्य संस्नाति प्रतिवासरम्॥
वैकुण्ठादप्यहं नित्यं मध्यान्हे मणिकर्णिकाम्।
विगाहे पद्मया सार्द्धं मुदा परमया मुने॥
सत्यलोकात् प्रतिदिनं हंसया च पितामहः।
माध्याह्निक विधानाय समायान्मणिकर्णिकाम्॥
इन्द्राद्या देवताः सर्वा मरीच्याद्या महर्षयः।
माध्यान्हिकविधानाय समीयुर्मणिकर्णिकाम्॥

विश्वनाथ अन्नपूर्णाके साथ तथा विष्णु लक्ष्मीके साथ प्रतिदिन मध्याह्नके समय मणिकर्णिकामें नहानेको आते हैं। इस प्रकार सत्यलोकसे पितामह ब्रह्मा, स्वर्गलोकसे इन्द्रादि देवतागण, मरीचि आदि महर्षिगण भी स्नानादिके लिये प्रतिदिन मध्याह्नकालमें मणिकर्णिकामें आते हैं। इसी कारण काशीखण्डमें लिखा है:—

दशानामश्वमेधानां यज्ञानां यत्फलं स्मृतम्।
तदवाप्नोति धर्मात्मा स्नात्वा तत्र वरानने॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम्।
मणिकर्ण्यां विधिस्नातः श्रद्धया तदवाप्नुयात्॥

दस अश्वमेध यज्ञ करनेसे जो पुण्य होता है, मणिकर्णिकास्नानसे वह पुण्य होता है। समस्त तीर्थभ्रमणसे जो पुण्य होता है और सकल प्रकार दान करनेसे जो फल मिलता है, केवल मणिकर्णिकामें श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक स्नान करनेसे उतना फल मिलता है। यही सब मोक्षलाभके विषयमें मणिकर्णिका माहात्म्य है।

काशीमें शिवगेहिनी भवानीकी बड़ी महिमा है। सनत्कुमारसंहितामें लिखा है:—

ये येऽभिवाञ्छन्ति समस्त भोगा-
निहापि भुक्तिं परतोऽप्यविघ्नम्।
तेभ्यः समस्तं ददती भवानी
वसत्यजस्रं गृहिणी मृड़स्य॥

काशीनिवासिनी शिवगृहिणी भवानी जो जो कुछ चाहते हैं, इहलोकमें भुक्ति या परलोकमें मुक्ति, सभीको सब कुछ प्रदान करती हैं। और भी काशीखण्डमें:—

योगक्षेमं सदा कुर्याद्द भवानी काशिवासिनाम्।
तस्माद्द भवानी संसेव्या सततं काशिवासिभिः॥
गृहमध्येऽत्र विश्वेशो भवानी तत्कुटुम्बिनी।
सर्वेभ्यः काशिसंस्थेभ्यो मोक्षभिक्षां प्रयच्छति॥

अन्नपूर्णा भवानी काशीवासियोंका योगक्षेम वहन करती हैं, इसलिये काशीवासियोंको सदा अन्नपूर्णाकी पूजा करनी चाहिये। विश्वनाथपुरीके भीतर विश्वेश्वर गृहस्वामी और भवानी उनकी घरवाली हैं, जो कि समस्त काशीनिवासियोंको मोक्षभिक्षा प्रदान करती हैं। और भी ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है:—

दीनं वदान्यं महदल्पकं वा पुण्यं महापातकसंयुतं वा।
आराधिता सा समतां विधत्ते दयापरा भोगमोक्षैकहेतुः ॥

दीन हो या वदान्य हो, महत् हो या अल्प हो, पुण्यात्मा हो या महापापी हो, उपासना करनेपर भवानी सभीके प्रति समानभाव दिखाती हैं, आप परमदयामयी तथा भोगमोक्ष दोनोंकी ही देनेवाली हैं।

इस प्रकारसे कितने ही तीर्थ काशीपुरीमें विराजमान हैं, जिनके दर्शन-स्पर्शनसे तीर्थसेवीको अशेष कल्याणकी प्राप्ति होती है। समस्त भारतवर्षमें जितने तीर्थ हैं, वे सभी केवल काशीक्षेत्रमें ही मिलते हैं, इसी कारण काशी सर्वोत्तम तीर्थराज है। सब तीर्थोंमें ज्ञानवापी, ज्ञानमण्डप, मुक्तिमण्डप, चक्रतीर्थ, पञ्चनद, विन्दुमाधव, मंगलागौरी, गभस्तीश, दक्षेश, दशाश्वमेध, शूलटंक, कालभैरव, षट्पञ्चाशद्गणेश, ढुण्ढिराज, पञ्चक्रोशी, अन्तर्गृह, कृत्तिवासेश्वर, रत्नेश्वर, मध्यमेश्वर, वृद्धकालेश, अपमृत्युरेश्वर, व्यासेश्वर, पराशरेश्वर, कपर्दीश्वर, ओंकारेश्वर, त्रिलोचन, कपिलाह्रद, शैलेश, विष्णुपादोदक, आदिकेशव, केदार, चन्द्रेश्वर, मणिकर्णीश्वर, तारकेश्वर, धर्मेश, धर्मकूप, वीरेश्वर, हरिश्चन्द्रेश्वर, सोमेश्वर, प्रभास, विशालाक्षी, दुर्गा, संकटमोचन, सूर्यकुण्ड, लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, मयूखादित्य, द्वादशादित्य, चण्डिका, ॐकारेशी, भीमचंडी, शांकरी, चित्रघंटा, चतुर्दशलिङ्ग, चौषटयोगिनी, दुर्गाकुण्ड, काशीकरवट, पञ्चतीर्थ, कपालमोचन, दण्डखात, पिशाचमोचन, तिलभाण्डेश्वर, दुग्धविनायक, वटुकभैरव, दंडपाणि, साक्षिविनायक, रेणुका, राजराजेश्वरी, धूपचण्डी, कल्याणी, सिद्धेश्वरी, वैद्यनाथ, यागेश्वर, पुष्कर, जगन्नाथ, विन्दुवासिनी, शीतला, ललिता, सिद्धविनायक, संकटादेवी, ध्रुवेश्वर, नागकूप इत्यादि तीर्थसमूह विशेष प्रसिद्ध हैं।

अब तीर्थराज प्रयागके विषयमें कुछ कहा जाता है। 'सितासिते' आदि वेदमन्त्रके द्वारा प्रयागमें स्नान तथा शरीरत्यागका उत्तमफल पहिले ही बताया गया है। मत्स्यपुराणमें लिखा हैः—

देशस्थो यदि वाऽरण्ये विदेशे यदि वा गृहे।
प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः ॥

स्कन्द पुराणमें भी—

बहु वाल्पतरं वापि पापं यस्य नराधिप ! ।
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ॥

कूर्म पुराणमें भी—

पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम् ।
प्रवेशात्तस्य तद्भूमावश्वमेधः पदे पदे ॥

देशमें हो या जङ्गलमें, विदेशमें हो या अपने घरमें, प्रयागराजको स्मरण कर जो प्राण त्याग करता है, उसको ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है। किसीका पाप अधिक या कम हो, प्रयागका स्मरण करनेसे नष्ट हो जाता है। प्रयागराजका मण्डल पांच योजन तक विस्तृत है, उसके भीतर प्रवेश करते पद-पद पर अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है।

प्रयागमें गङ्गा यमुना संगममें स्नान करनेका महान् फल पद्मपुराणमें लिखा गया है यथा—

पश्चिमाभिमुखी गंगा कालिन्द्या सह संगता ।
हन्ति कल्पकृतं पापं सा माघे नृप ! दुर्लभा ॥
अमृतं कथ्यते राजन् ! सा वेणी भुवि कीर्त्तिता ।
तस्यां माघे मुहूर्त्तं तु देवानामपि दुर्लभम् ॥

यमुनासे मिली हुई पश्चिममुखिनी गङ्गा एक कल्पके पापको नष्ट करती है, माघ महीनेमें उसकी विशेष महिमा है। त्रिवेणी अमृतरूपिणी है, उसका माघ महीनेका मुहूर्त्त देवताओंको भी दुर्लभ है। और भी—

ब्रह्मविष्णुमहादेवा रुद्रादित्यमरुद्गणाः ।
ब्रह्माणी पार्वती लक्ष्मीः शची मेधाऽदिती रतिः ॥
स्नातुमायान्ति ते सर्वे माघे वेण्यां नराधिप ! ।
कृते युगे स्वरूपेण कलौ प्रच्छन्नरूपिणः ॥
सितासिते तु यो मज्जेदपि पापशतावृतः ।
मकरस्थे रवौ माघे न स गर्भेषु मज्जति ॥
दुर्गया वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ।
प्रयागे दह्यते सा तु माघे मासि नराधिप ! ॥

वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणै-
स्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः।
योगैश्च संयान्ति नराश्च यां गतिं
स्नाता हि ये माकरभास्करोदये।

(पद्मपुराण)

सितासिते तु यत् स्नानं माघमासे युधिष्ठिर!।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥

(महाभारत)

सर्वेषामपि वर्णानां सर्वाश्रमवतामपि।
माघस्नानं तु धर्मस्य धाराभिः खलु वर्षति॥

(भविष्यपुराण)

ब्रह्मा विष्णु महेश प्रमुख समस्त देवतागण तथा ब्रह्माणी पार्वती लक्ष्मी प्रमुख समस्त देवियां माघ महीनेमें त्रिवेणी स्नानको आते हैं। सत्ययुगमें रूप धारण करके सब आते थे, अब कलियुगमें प्रच्छन्न रूपसे आया करते हैं। माघ महीनेमें सूर्य जब मकरराशिमें हो, उस समय महापापी भी यदि त्रिवेणीमें डूबकर स्नान करे तो उसे पुनः मातृगर्भमें डूबना नहीं पड़ता है। वैष्णवी माया दुःखसे जीती जाती है, देवतालोग भी उससे पार नहीं पाते हैं, केवल प्रयागमें माघस्नानसे वह जल जाती है। चिरकाल तक हवा जल-पत्ता खाकर शरीर सुखाकर उग्र तपके द्वारा एवं योगसाधनाके द्वारा मनुष्यको जो उत्तमा गति मिलती है, केवलमात्र मकरराशिमें त्रिवेणी स्नानसे वह गति प्राप्त होती है। महाभारतमें भी लिखा है, कि माघमें त्रिवेणी स्नान करनेसे शतकोटि कल्पमें भी जीवको पुनः संसारमें नहीं आना पड़ता है। भविष्य पुराणमें भी लिखा है कि चाहे किसी वर्ण या किसी आश्रमका मनुष्य हो माघमें त्रिवेणी स्नानसे धर्मकी धारा बरसती है। प्रयागमें त्रिवेणी स्नानसे मोक्षलाभके विषयमें 'काश्यां मरणान्मुक्तिः' की तरह यही विज्ञान समझना चाहिये कि योगनाड़ियां इड़ा-पिङ्गला-सुषुम्नाके सङ्गमरूपी आध्यात्मिक त्रिवेणीमें अलौकिक योगस्नान द्वारा ही मुक्ति होती है, जिसमें इड़ा गङ्गा, पिङ्गला यमुना और सुषुम्ना सरस्वती है। स्थूल त्रिवेणी स्थूल वाराणसीकी तरह मोक्षपथको प्रशस्त करने वाली है। प्रयागमें मुण्डनकी बड़ी महिमा बताई गई है।

प्रयागे वपनं कुर्याद्गयायां पिण्डपातनम् ।
दानं दद्यात् कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां तनुं त्यजेत् ॥
किं गयापिण्डदानेन काश्यां वा मरणेन किम् ।
किं कुरुक्षेत्रदानेन प्रयागे वपनं यदि ॥
केशानां यावती संख्या छिन्नानां जाह्नवीतले ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥
यावन्ति नखलोमानि वायुना प्रेरितानि वै ।
पतन्ति जाह्नवीतोये नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥
तावदब्दसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

प्रयागमें केशमुण्डन, गयामें पिण्डदान, कुरुक्षेत्रमें दान और काशीमें शरीरत्याग करना चाहिये। यदि प्रयागमें केशमुण्डन हो जाय तो गयामें पिण्डप्रदान, काशीमें मरण और कुरुक्षेत्रमें दानका क्या प्रयोजन है? जितने संख्यक केश तथा नख गङ्गाजलमें मुण्डनसे गिरते हैं, उतने हजार वर्ष स्वर्गलोकमें निवास होता है। यही सब संक्षेपसे वर्णित प्रयागमाहात्म्य है।

अतः पर गङ्गा माहात्म्यका वर्णन किया जाता है। गङ्गाके विषयमें आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक वर्णन इससे पहिलेके अध्यायोंमें कई बार किये जाचुके हैं तथापि प्रसङ्गोपात्त यहां भी कुछ कहना उचित जान पड़ता है। ऋग्वेद १०-७५-५ में, कात्यायनश्रौतसूत्र तथा शतपथ ब्राह्मणमें, रामायण, महाभारत और कितने ही पुराणोंमें गङ्गाकी अलौकिक महिमा बताई गई है। रामायण आदि काण्ड ४२,४३,४४ सर्गमें लिखा है "स्वर्गसे उतरकर गङ्गा शिवजटामें अटक गई। भगीरथके पुनः तपस्या करनेपर विन्दुसरोवरमें आगिरी। विन्दुसरोवरसे गङ्गाकी सात धारा निकली। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नामक तीन धारा पूर्व दिशाको तथा वङ्क्षु, सीता और सिन्धु नामक तीन धारा पश्चिमदिशाको चली गई। एक धारा भगीरथ प्रदर्शित मार्गमें चली, उसीका नाम भागीरथी है। भागीरथीने ही सागरमें जाकर सगरवंशका उद्धार किया है।

देवीभागवतमें लिखा है, कि नारायणप्रिया सरस्वती और गङ्गा परस्परके

शापसे मर्त्यलोकमें आगई हैं, और कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर अन्यान्य तीर्थोंके साथ विष्णुलोकको चली जायंगी। यथा देवी भा० ९-८ में—

कलेः पञ्चसहस्रं च वर्षं स्थित्वा च भारते।
जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम्॥

९-८-१०

यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीं वृन्दावनं विना।
यास्यन्ति सार्द्धं ताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञया हरेः॥

९-८-२१

कलिके पांच हजार वर्षतक भारतमें रहकर गङ्गा, सरस्वती और पद्मावती नदीरूप त्यांग करके विष्णुलोकको चली गईं। काशी और वृन्दावनके सिवाय और सब तीर्थ भी उनके साथ ही विष्णुकी आज्ञासे वैकुण्ठमें जायंगे। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें भी लिखा है—

अद्य प्रभृति देवेशि! कलेः पञ्चसहस्रकम्।
वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि॥

श्रीभगवान् विष्णुने गङ्गादेवीसे कहा कि सरस्वतीके शापसे कलियुगके पांच हजार वर्ष तक तुम्हें भारतमें रहना पड़ेगा। इन प्रमाणोंसे गङ्गादेवी आजकल भारतमें हैं या नहीं सो भगवान् विष्णु ही जानते हैं।

गङ्गा अति पवित्र देवनदी हैं। महाभारतमें शिलवृत्तिका प्रश्न है—

के देशाः के जनपदाः के ग्रामाः के च पर्वताः।
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यस्तदुच्यताम्॥

कौन कौन देश, जनपद, ग्राम तथा पर्वत उत्तम हैं और कौन कौन नदियां भी पुण्यमयी हैं सो बताईये। उत्तरमें सिद्धने कहा—

ते देशास्ते जनपदास्ते ग्रामास्ते च पर्वताः।
येषां भागीरथी गंगा मध्येनैति सरिद्वरा॥
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः।
गतिं तां लभते जन्तुर्गंगां संसेव्य यां लभेत्॥

पूर्वे वयसि पापानि कृत्वा कर्माणि ये नराः ।
पश्चाद्गंगां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम् ॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोयेषु तिष्ठति ।
तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥
अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथाऽपहृत्य पापानि भाति गङ्गाजलोक्षितः ॥
भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहितचेतसाम् ।
गतिमन्वेषमाणानां न गंगासदृशी गतिः ॥

वे ही देश, जनपद, ग्राम तथा पर्वत उत्कृष्ट हैं, जिनके मध्यमें नदी श्रेष्ठ भागीरथी बहा करती हैं। तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और त्यागके द्वारा जो उत्तम गति मिलती है, केवल गंगा सेवनसे वही मिलती है। पूर्व वयसमें पाप करने पर भी जो लोग पीछेसे गंगासेवन करते हैं, उन्हें उत्तमगति मिलती है। जबतक मनुष्यकी अस्थि गंगाजलमें रहती है, उतने हजार वर्ष तक स्वर्गलोकमें वास होता है। जिस प्रकार सूर्यदेव घोर अन्धकार नष्ट करके चमकते हैं, उसी प्रकार गङ्गादेवी भी समस्त पापनाश कर चमकती है। संसारतापतप्त जो लोग उत्तम गतिको ढुंड़ते हैं, उनके लिये गंगातुल्य उत्तमगति और कोई भी नहीं है। और भी—

दर्शनात् स्पर्शनात् पानात्तथा गङ्गेति कीर्त्तनात् ।
स्मरणादेव गंगायाः सद्यः पापात् प्रमुच्यते ॥

(महाभारते)

किमष्टाङ्गेन योगेन किं तपोभिः किमध्वरैः ।
वास एव हि गंगायां ब्रह्मज्ञानस्य कारणम् ॥

(नारदीये)

जाह्नवीतीरसम्भूतां मृदं मूर्द्ध्ना बिभर्त्ति यः ।
बिभर्त्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम् ॥

(महाभारते)

वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम् ।
अवर्ज्यं जाह्नवीतोयमवर्ज्यं तुलसीदलम् ॥

(यमसंहितायाम्)

सन्तोषः परमैश्वर्यं तत्त्वज्ञानं सुखात्मता ।
विनयाचारसम्पत्तिर्गङ्गाभक्तस्य जायते ॥

(ब्राह्मे)

चान्द्रायणसहस्राणां यत्फलं परिकीर्त्तितम् ।
ततः शतगुणं पुण्यं गङ्गागण्डूषतो भवेत् ॥

(भविष्ये)

स्नातानां शुचिभिस्तोयैर्गाङ्गेयैः प्रयतात्मनाम् ।
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥

(भारते)

संक्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
पुष्ये स्नात्वा तु गंगायां कुलकोटीः समुद्धरेत् ॥

(ब्रह्माण्डे)

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव योऽवगाहेत जाह्नवीम् ।
सः स्नातः सर्वतीर्थेषु किमर्थमटते महीम् ॥

(गारुड़े)

गङ्गातीरे सदा लिङ्गं बिल्वपत्रैश्च ये नराः ।
पूजयिष्यन्ति सम्प्रीतास्तेऽपवर्गस्य भाजनम् ॥

(भविष्ये)

यज्ञो दानं तपो जप्यं श्राद्धं च सुरपूजनम् ।
गंगायां च कृतं सर्वं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥

(ब्रह्माण्डे)

गंगाके दर्शन, स्पर्शन, गुणकीर्त्तन, जलपान और केवल स्मरणमात्रसे मनुष्य सद्यः पापमुक्त होता है। अष्टाङ्ग योगा, तपस्या या यज्ञ करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है, क्योंकि केवल गङ्गातीर निवास ही ब्रह्मज्ञानका हेतु है। गंगातीरकी

मिट्टीको जिसने सिर पर धारण किया, मानो अज्ञा:तमोनाशके लिये उसने सूर्यदेवको सिर पर धारण कर लिया। अन्य नदी, कूप आदिके जल तथा अन्य वृक्षके पत्ते बासी होनेपर त्याग देने योग्य होते हैं, किन्तु गंगाजल और तुलसी-दल सदा रखने योग्य तथा बासी नहीं होते हैं। गङ्गाभक्तको सन्तोष, उत्तम ऐश्वर्य, तत्त्वज्ञान, विमल सुख, विनय और आचार स्वतः लाभ होता है। सहस्र-वार चान्द्रायणव्रत करनेसे जो पुण्य होता है, गङ्गाजलका गण्डूष लेनेसे उसका शतगुण पुण्य होता है। इन्द्रिय तथा मनको रोककर पवित्र गंगाजलमें स्नान करनेसे सौ यज्ञसे भी अधिक फल होता है। संक्रान्ति, पुष्यनक्षत्र या चन्द्रसूर्य ग्रहणके समय जो गंगास्नान करता है, उसके कोटिकुल उद्धारको प्राप्त होते हैं। चन्द्रसूर्यग्रहणके समय जिसने गंगास्नान किया, उसने सभी तीर्थोंमें स्नानका पुण्य ले लिया, उसको पृथिवी घूमनेकी आवश्यकता नहीं है। गंगातट पर विल्वपत्रसे शिवपूजन जो करता है, उसको मोक्षका अधिकार मिलता है। यज्ञ, दान, तप, जप, देवपूजा तथा श्राद्धतर्पण गङ्गामें किये जानेपर कोटि-कोटि-गुण फल उत्पन्न करता है। इस प्रकारसे श्रुतिस्मृति पुराणोंमें गंगाकी भूरि भूरि प्रशंसा लिखी गई है।

निम्नलिखित कर्म पवित्र गंगाजलमें करना निषिद्ध बताया गया है—

गंगां पुण्यजलां प्राप्य त्रयोदश विवर्जयेत् ।
शौचमाचमनं चैव निर्माल्यं मलघर्षणम् ।।
गात्रसंवाहनं क्रीड़ां प्रतिग्रहमथारतिम् ।
अन्यतीर्थरतिं चैव अन्यतीर्थप्रशंसनम् ।।
वस्त्रत्यागमथाघातं सन्तारं च विशेषतः ।।

(ब्रह्माण्डे)

नाभ्यंगितः प्रविशेच्च गंगायां न मलार्दितः ।
न जल्पन्न मृषा वीक्षन्न वदन्ननृतं नरः ।।

(स्कान्दे)

पुण्यतोया गङ्गामें तेरह काम नहीं होने चाहिये यथा—मलमूत्रादि त्याग, मुख धोना, दन्तधावन, कुल्ली आदि करना नहीं चाहिये, आचमन करना या पूजाके फूल निर्माल्य फेंकना नहीं चाहिये, मलघर्षण करना या बदनको मलना नहीं चाहिये, जलक्रीड़ा अर्थात् स्त्रीपुरुषोंकी रतिक्रीड़ा, बुढ़वामङ्गल आदि विला-

सिताजनक क्रीड़ा नहीं करनी चाहिये, दान ग्रहण नहीं करना चाहिये, गङ्गाके प्रति अभक्ति, अन्यतीर्थ भक्ति या अन्यतीर्थ प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, पहिने हुए वस्त्रको छोड़ना, जलपर आघात करना या तैरना नहीं चाहिये। स्कन्द पुराणमें लिखा है—वदनमें तेल मलकर या मयले बदन होकर गङ्गामें प्रवेश नहीं करना चाहिये, वृथा बकवाद, मिथ्या भाषण या इधर उधर ताकना तथा कुदृष्टि नहीं करनी चाहिये।

गङ्गाकी तरह गङ्गासेवित कनखल, हरिद्वार आदि तीर्थ, गङ्गाद्वार गङ्गोत्री, गङ्गासागर सङ्गम, गङ्गा गोमती सङ्गम, गङ्गा सरस्वती सङ्गम, गङ्गा यमुना सङ्गम, गङ्गा कौशिकी सङ्गम, गङ्गा गण्डकी सङ्गम; गंगा सरयू संगम आदि संगम तीर्थोंकी भी विशेष महिमा शास्त्रमें बताई गई है।

अब पितृतीर्थ गयाके विषयमें कुछ कहा जाता है। रामायण अयोध्याकाण्ड १०७।१३ में लिखा है—

एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद्गयां व्रजेत्॥

पिता गुणवान् विद्वान् बहुपुत्रकी कामना इस लिये करते हैं कि उनमेंसे एक भी गयामें जाकर पिण्डदान करेंगे तो पितरोंका उद्धार हो जायगा। याज्ञवल्क्य स्मृति १।२६० में लिखा है—

'यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमश्नुते'

गया श्राद्धमें दिया हुआ सब कुछ अनन्तफल उत्पन्न करता है। इस तरहसे महाभारतके वनपर्व ८४, ८७ तथा ९५ अध्याय, अनु० प० २५ अ० द्रोण० प० ६६ अ० तथा हरिवंशमें गयातीर्थके विषयमें बहुत कुछ लिखा है। वनपर्व ९५ अध्यायमें लिखा है कि राजर्षि गयने ब्रह्मसरोवरके निकट प्रचुर अन्न तथा भूरिदक्षिणा देकर यज्ञ किया था, तबसे इसका नाम गयातीर्थ हुआ है। हरिवंशके मतानुसार सुद्युम्नके पुत्र गयने यहां अपनी राजधानी स्थापित की थी। उससे इसका नाम गया हुआ है। वायुपुराणमें लिखा है कि परमतपस्वी गय नामक असुरके नामसे ही गया तीर्थकी उत्पत्ति हुई है। उनके पवित्र शरीर पर ब्राह्मणोंने यज्ञ किया था। यमराजने उन्हें निश्चल करनेके लिये उनपर धर्मशिला रख दिया था। उनको यह वर भी मिला था कि उसी

शिलाके ऊपर समस्त देवता तथा भगवान् विष्णुका चरण रहेगा। इसीसे पुण्य क्षेत्र गया नाम हुआ है। महाभारतके वन पर्वमें ८५-१२१-१२२ में लिखा है—

'उवास स स्वयं तत्र धर्मराजः सनातनः
यत्र सन्निहितो नित्यं महादेवः पिनाकधृक्'

अर्थात् अन्यान्य देवता तथा भगवान् विष्णुके अतिरिक्त धर्मराज यम और पिनाकी महादेव भी सदा गयाक्षेत्रमें निवास करते हैं। महाभारतके अनुसार गयशिर, अक्षयवट, महानदी, धर्मारण्य, ब्रह्मसर, धेनुक तीर्थ, गृध्रवट, उद्यन्त पर्वत, योनिद्वार, फल्गुतीर्थ, धर्मप्रस्थ, मतंगाश्रम और धर्मतीर्थ इतने तीर्थ गयाक्षेत्रमें हैं। अग्नि तथा वायुपुराणमें मौनार्क, प्रेतशिला आदि और भी कई एक तीर्थोंका वर्णन देखनेमें आता है।

इस प्रकारसे अति प्राचीन हिन्दुतीर्थ होनेपर भी बौद्धप्राधान्यके समय गयाक्षेत्र एक प्रधान बौद्धतीर्थ भी वन गया था। शाक्यसिंहने इसी क्षेत्रके अन्तर्गत निरञ्जना नदीके तटपर बोधिवृक्षके मूलमें ज्ञानलाभ किया था, तवसे उस स्थानको बुद्धगया कहा जाता है। उस स्थानमें भी देव-पदचिह्नपर हिन्दुगण पिण्डदान करते हैं, जिसका प्रमाण गयामाहात्म्य ७.७१ में लिखा है—

सर्वत्र मुण्डपृष्ठाद्रिः पादैरेभिः सुलक्षितः।
प्रयान्ति पितरः सर्वे ब्रह्मलोकमनामयम् ॥

बोधिगयामें मुण्डपृष्ठ पर्वतके सर्वत्र देवपदचिह्न हैं, जहांपर पिण्डदान करनेसे पितरोंको ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है।

गयामें यात्रा तथा पितृकृत्य कई दिनोंतक करनेको विधि है। यथा गयामाहात्म्य वायुपुराणमें—प्रथम दिन सवस्त्र फल्गुतीर्थमें और उसके बाद ब्रह्मकुण्डमें स्नान तर्पण करना होता है। तदनन्तर प्रेतपर्वत, प्रेतशिला, रामतीर्थ, उत्तरमानस, मौनार्क इन सब स्थानोंमें जाकर पूजा श्राद्ध तथा पिण्डदान करना होता है। दूसरे दिन प्रथमतः नागकूट, गृध्रकूट तथा उत्तरमानसके मध्यवर्त्ती फल्गुतीर्थमें पिण्डदान करना होता है और उसके बाद धर्मारण्य, ब्रह्मतीर्थ तथा बुद्धगयास्थित महाबोधितरुके निकट पिण्डदान करना होता है। तीसरे दिन ब्रह्मसरोवरमें जाना होता है, जिसके लिये द्रोणपर्व ६६ अ० में लिखा है—

श्राद्धाय पिण्डदानाय तर्पणायात्मशुद्धये।
स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन् ऋणत्रयविमुक्तये॥

इसी मन्त्रको पढ़कर पीछेसे श्राद्ध करना होता है। तदनन्तर गोप्रचार तीर्थ तथा ब्रह्मयूप होकर यमबलि, श्वानबलि और काकबलि देनेका विधान है। चौथे दिन फल्गु तीर्थमें स्नान करके विष्णुपदपर पिण्डदान करना होता है और उसके बाद ब्रह्मपद, रुद्रपद, अर्कपद आदिमें श्राद्ध तथा पिण्डदान करनेकी विधि है। पांचवे दिन गदालोलतीर्थमें स्नान करके श्राद्धपिण्डदान और सबसे अन्तमें अक्षयवटपर जाके पितरोंके उद्देश्यसे दान करना होता है। राजर्षि गयके यज्ञकालमें यह वटवृक्ष चिरजीवी हुआ था, इस लिये यहांका दान अक्षयफल प्रदान करता है यही प्राचीन शास्त्रमर्यादा है।

अब गयातीर्थकी महिमाके विषयमें कुछ शास्त्रीय प्रमाण दिये जाते हैं। कूर्मपुराणमें लिखा है—

गयातीर्थं परं गुह्यं पितृणां चातिवल्लभम्।
कृत्वा पिण्डप्रदानं तु न भूयो जायते नरः॥
सकृद्गयाभिगमनं कृत्वा पिंडंददाति यः।
पितरस्तारितास्तेन यास्यन्ति परमां गतिम्॥
धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयायां पिंडदायिनः।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्याप्नुयात् परम्॥

गयातीर्थ गूढ़रहस्यपूर्ण तथा पितरोंका अति प्रिय है। यहांपर पिण्ड देनेसे पुनर्जन्म नहीं होता है। जो एकवार भी गया जाकर पिण्ड देता है उसके पितर उद्धार पाकर परमगतिको जाते हैं। वे लोग धन्य हैं जिनने गयामें पिण्ड दिया है, वे आगे पीछेके सात कुल तार देते हैं और स्वयं भी उन्नत गतिको पाते हैं। और भी—

दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः।
न्यस्य विष्णुपदे दण्डं मुच्यते पितृभिः सह॥

(वायवीये)

दण्डधारी संन्यासीको गयामें पिण्ड देना नहीं पड़ता है, केवल विष्णुपदमें दण्डस्पर्श करानेसे ही पितरोंके साथ मोक्षलाभ होता है। और भी—

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहे वनम् ।
च्यवनस्याश्रमः पुण्यो नदी पुण्या पुनःपुना ॥

(पाद्मे सृष्टिखण्डे)

श्वेतकल्पे तु वाराहे गयो यागमकारयत् ।
गयनाम्ना गया ख्याता क्षेत्रं ब्रह्मादिकांक्षितम् ॥

(वायवीये)

यथा यथा व्रजन् याति जनः स्थानाद्गयां प्रति ।
तथा तथा दिवं यान्ति प्रेताः पूर्वपितामहाः ।
ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या देवमादिगदाधरम् ।
ते प्राप्स्यन्ति धनं धान्यमायुरारोग्यमेव च ॥

(अग्निपुराणे)

अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् ।
नासौ तत्फलमाप्नोति फल्गुतीर्थे यदाप्नुयात् ॥

(वा० पु०)

कीकट प्रदेशमें गया पुण्य भूमि है, राजगृहमें वन पुण्य स्थान है, च्यवन महर्षिका आश्रम पुण्यमय है और पुनःपुन नदी पुण्यमयी है। राजर्षि गयने श्वेतवाराह कल्पमें यज्ञ किया था, तबसे गया नाम हुआ है, ब्रह्मादिदेवगण भी इस पुण्यक्षेत्रको चाहते हैं। इसकी इतनी महिमा है कि गया यात्री अपने घरसे जितना आगे बढ़ता है, उतना ही उसके पितर ऊर्द्ध्वलोकको पहुंचते हैं। गयामें देवगदाधरका दर्शन भक्तिसे करनेपर धन धान्य आयु तथा आरोग्यलाभ होता है। सहस्र सहस्र अश्वमेध यज्ञ करनेपर भी जो पुण्य नहीं प्राप्त होता है, फल्गुतीर्थमें स्नानतर्पण करनेपर वह पुण्य प्राप्त होता है। इत्यादि इत्यादि गयाक्षेत्रकी महिमा है।

अब सप्त अमरपुरियोंमेंसे अन्यतम पुरी मथुराके विषयमें कुछ शास्त्रीय वर्णन किया जाता है। यथा आदिवराह पुराणमें—

विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मण्डलम् ।
यत्र तत्र नरः स्नातो मुच्यते सर्वपातकैः ॥

सर्वधर्मविहीनानां पुरुषाणां दुरात्मनाम् ।
नरकार्त्तिहरा देवी मथुरा पापनाशिनी ॥
अनुषङ्गेण गच्छन्ति वाणिज्येनापि सेवया ।
मथुरास्नानमात्रेण पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥
नामापि गृह्णतामस्याः सदैव त्वेनसः क्षयः ।
अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति ॥
तीर्थे तु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भवेदिति ।
मथुरायां कृतं पापं मथुरायां प्रणश्यति ॥

मथुरा मण्डल बीस योजन विस्तृत है, उसमेंसे जहां तहां स्नान करनेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो सकता है। पापनाशिनी मथुरा देवी सकलधर्म-हीन दुरात्मा जनोंके भी नरक दुःखको दूर करती है। किसी अन्य सम्पर्कसे वाणिज्यके लिये अथवा केवल भ्रमणार्थ मथुरा जानेपर भी स्नानमात्रसे जीव पापमुक्त तथा ऊर्द्ध्वगति प्राप्त हो सकता है। मथुराका नाम लेनेपर भी पाप कटता है। अन्यत्र किया हुआ पाप तीर्थमें कटता है, तीर्थमें किया हुआ पाप बज्रलेप हो जाता है, किन्तु मथुरामें किया हुआ पाप मथुरामें ही नष्ट होता है। मथुराकी उत्पत्ति कैसे हुई इस विषयमें पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है—

ऋषिर्माथुरनामात्र तपः कुर्वति शाश्वते ।
ततोऽस्य माथुरं नामाभवदाद्यं श्रिया युतम् ॥
मकारे च उकारे च अकारे चान्तसंस्थिते ।
मथुराशब्दो निष्पन्न ओंकारस्य ततः समः ॥
महारुद्रो मकारः स्यादुकारो विष्णुसंज्ञकः ।
अकारस्तु ब्रह्मा स्यात्त्रिशब्दं माथुरं भवेत् ॥
या गतिर्योगयुक्तस्य ब्रह्मज्ञस्य मनीषिणः ।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् मथुरायां नरस्य च ॥

माथुर नामक ऋषिने यहांपर बहुवर्ष तक तपस्या की थी, उन्हींके नामसे मथुरा नाम पड़ा है। मकार, उकार, अकार तीनोंके संयोगसे मथुरा शब्द बना

है, इसलिये महिमामें मथुरापुरी प्रणवसदृश है। महारुद्र मकार, विष्णु उकार और ब्रह्मा अकार है। इसी कारण योगपरायण ब्रह्मज्ञ मनीषीको जो उत्तम गति प्राप्त होती है, मथुरामें शरीर त्याग होनेपर वही उत्तम गति मिलती है।

मथुराकी तरह तदन्तर्गत तीर्थ दर्शन तथा देवदर्शनकी भी बड़ी महिमा शास्त्रोंमें बताई गई है। यथा—

जन्माष्टमीदिने प्राप्ते तत्र यो मां प्रपश्यति ।
जन्मकोटिकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

(वाराहे)

इहजन्मकृतं पापमन्यजन्मकृतं च यत् ।
तत्सर्वं नश्यते शीघ्रं कीर्त्तने केशवस्य च ॥

(आदिवाराहे)

विश्रान्तितीर्थे विधिवत् स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम् ।
पितॄनुद्धृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रपद्यते ॥

(स्कान्दे)

पातकी पातकान्मुक्तः पुण्याढ्यः स्यादपातकी ।
फलाभिसन्धिरहितः कालिन्द्यामेव मुच्यते ॥

(पाद्मे)

स्नात्वा मानसगंगायां दृष्ट्वा गोवर्द्धनं हरिम् ।
अन्नकूटं परिक्रम्य किं मनः परितप्यसे ॥

(आदि वाराहे)

वृन्दावनं द्वादशमं वृन्दया परिरक्षितम् ।
मम चैव प्रियं भूमे सर्वपातकनाशनम् ॥

(आदि वाराहे)

मथुरामें जन्माष्टमीके दिन श्रीकृष्णदर्शन करनेसे कोटि जन्मका पाप नष्ट होता है। केशवका गुणकीर्त्तन करनेसे इह जन्म तथा अन्य जन्मके सब पाप कटते हैं। विश्रान्ति तीर्थमें स्नान तथा पितरोंके श्राद्ध तर्पण करनेसे उनका उद्धार और अपना विष्णुलोक वास होता है। यमुनामें स्नान करनेसे पापी

पापमुक्त, पापहीन व्यक्ति पुण्यधनसे धनी और कामनाहीन व्यक्ति मोक्षलाभ करता है। मानसगङ्गामें स्नान, गोवर्द्धन तथा हरिका दर्शन और अन्नकूटकी परिक्रमा होनेसे मनको कोई भी दुःख नहीं रह जाता है। मथुरातीर्थवर्त्ती बारह बनोंमेंसे वृन्दगोपी रक्षित जो वृन्दावन है, वह सदा श्रीकृष्णकी प्रियभूमि तथा सकलपाप नाशकारी है। इस प्रकारसे मथुराभूमिके अनेक तीर्थोंकी महिमा शास्त्रमें देखी जाती है। इन तीर्थोंके सिवाय चौवीस यमुनातीर्थ, अक्रूरतीर्थ, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, मधुवन-तालवन-काम्यवन-कुमुदवन-महावन-बहुलावन-विल्ववन आदि द्वादशवन, भूतेश्वर, ध्रुवतीर्थ, ऋषितीर्थ आदि कितने ही तीर्थके वर्णन अनेक पुराणोंमें मिलते हैं, जो बाहुल्यभयसे यहांपर नहीं बताया गया।

प्रधान प्रधान कुछ तीर्थोंका विशेष वर्णन करके अब सामान्यतः कुछ प्राचीन तीर्थोंका वर्णन किया जाता है। पुष्कर-तीर्थराज है, इसमें स्नानादि करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल तथा ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है।

अगस्त्यसरोवर—यहां पर तीन रात उपवास करनेसे वाजपेय यज्ञफल मिलता है।

कोटितीर्थ—यहां महाकाल सदा निवास करते हैं। स्नानमें अश्वमेध फल है।

भद्र वट—नर्मदा नदी, यहां पर पितृतर्पण करनेसे अग्निष्टोमसदृश फल होता है।

चर्मण्वती नदी—यहां पर इन्द्रियनिग्रह करनेसे ज्योतिष्टोम सदृश फल होता है।

प्रभास—यहां हुताशन विराजते हैं, स्नानसे अग्निष्टोम तुल्य फल है।

सरस्वतीसागर सङ्गम—यहां पर स्नान करनेसे सहस्र गोदान तुल्य फल होता है।

समुद्रसिन्धुसंगम—यहां पर स्नान तथा पितृतर्पणसे वरुणलोक प्राप्ति होती है।

वसुधारातीर्थ—दर्शनसे अश्वमेध फल और स्नानतर्पणसे पितृलोक प्राप्ति होती है।

पञ्चनदतीर्थ—यहां पर पञ्चयज्ञ फल लाभ होता है।

कुरुक्षेत्रतीर्थ—सकल पापनाश और गोसहस्र दान फल है।

कपिलातीर्थ—स्नान, देवता और पितृपूजनसे सहस्र कपिला दानका फल होता है ।

ब्रह्मावर्त्ततीर्थ—स्नानसे ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है ।

सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग, सप्तावर्त्त तीर्थ—इनमें पितृ-देव तर्पण द्वारा पुण्यलोक प्राप्ति होती है ।

वटेश्वरपुरतीर्थ—केशवके दर्शनपूजन द्वारा इष्टसिद्धि होती है ।

कौशिकमुनिह्रद – यहां एक मास निवास करनेसे अश्वमेधका फल लाभ होता है ।

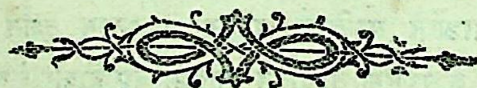
सूर्याटक, रामतीर्थ, सप्तगोदावर, देवपथ, तुङ्गकारण्य, मेधाविक, कालञ्जरपर्वत, देवह्रद, त्रिकूटपर्वत, भर्त्तृस्थान, ज्येष्ठस्थान, शृङ्गवेरपुर, मुञ्जावट—इन तीर्थोंमें स्नान दान, पूजा तर्पणादि द्वारा स्वर्गलोक प्राति होती है। प्रयाग, वासुकितीर्थ, अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तीपुरी और द्वारवती—ये सब तीर्थ मोक्षदायक हैं। पुष्कर, केदार, इक्षुमती, भद्रसर—ये सब तीर्थ पितृकार्यमें प्रशस्त है। वंशोद्भेद, हरोद्भेद, गंगोद्भेद, महालय, भद्रेश्वर, विष्णुपद, नर्मदाद्वार, गया—ये सब पितृतीर्थ हैं। अमरकण्टक, कुशावर्त्त, विल्वक, नैमिषारण्य, अगस्त्याश्रम, कौशिकी, सरयू, शोण, श्रीपर्वत, विपाशा, वितस्ता, शतद्रु, चन्द्रभागा, इरावती ये सभी तीर्थ विष्णुसंहिताके मतानुसार पितृकार्यमें प्रशस्ततम हैं।

कालके प्रभावसे अधिकांश तीर्थोंकी आज कल बहुत ही दुर्दशा देखनेमें आती है। जब ऋषि, देवता, तपस्वी, महात्माओंके शुभ निवास द्वारा तीर्थोंमें दिव्य विभूति प्रकट होती है, तो स्वतः सिद्ध बात है कि, जब तक तीर्थ निवासिगण सदाचारी, आस्तिक, जपपूजापरायण रहेंगे, यात्रिगण तीर्थदर्शन बुद्धिसे श्रद्धाभक्तिके साथ तीर्थोंमें निवास करेंगे, ज्ञानी महात्मा अधिक संख्यामें तीर्थमें निवास करेंगे, अनाचार—कदाचार—व्यभिचार आदि जन्य प्रबल पाप तीर्थोंमें एक बारगी ही न होंगे, तभी तक तीर्थोंकी महिमा अटूट, अक्षुण्ण रहेगी और इस सिद्धान्तका व्यतिक्रम कुछ भी होनेपर तीर्थकी महिमा नष्ट होने लग जायगी और तीर्थमेंसे दिव्यविभूति तिरोहित हो जायगी। किन्तु अत्यन्त खेदकी बात यह है कि, प्रायः सभी तीर्थोंमें तीर्थमहिमा विध्वंसनकारी ऊपर लिखित विषय आजकल प्रचुर देखनेमें आ रहे हैं। एक तो रेल आदि द्वारा जानेकी सुविधा हो जानेसे लोग आजकल प्रायः वायुसेवन या प्रमोदबुद्धिसे तीर्थयात्रा

करते हैं, पहिलेकी तरह तपस्याका मौका न रहनेसे श्रद्धा. भक्ति, प्रेमका भी मौका घट गया है। द्वितीयतः निरंकुश होकर घूमनेकी या समाजबन्धन तोड़कर यथेच्छ आहार विहारकी सुविधा तीर्थमें रहनेके कारण प्रायः सभी तीर्थ दुश्चरित्र, अनाचारी लोगोंसे भर गये हैं। तृतीयतः ऐसे नर नारियोंके अनाचारका सामान तैयार रखनेके कितने ही तीर्थोंमें मांस-मदिरा भी बिकने लगे हैं, वेश्याएं भी रहने लगी हैं, इत्यादि इत्यादि दुराचारोंकी पराकाष्ठा आजकल तीर्थोंमें ही बहुधा देखनेमें आती है। चतुर्थतः जो तीर्थगुरु कहलाते थे, त्यागी-ज्ञानी-वेदोज्ज्वला बुद्धि पण्डासे विभूषित होकर तीर्थयात्रियोंका कल्याण करना जिनकी प्राचीन मर्यादा तथा धर्म था, इनमेंसे अधिकांश ही आजकल अत्याचारी, अनाचारी, अर्थलोलुप, चरित्रहीन बनकर तीर्थयात्री तथा तीर्थ दोनोंके लिये ही महान् दुखदायी तथा सत्तानाशी बन गये हैं। उनके अत्याचारसे, उत्पीड़नसे तीर्थमें जाना भी आपत्तिजनक होगया है, देवमन्दिरमें १० मिनट शान्तचित्तसे बैठकर ध्यानधारणा करना भी कठिन होगया है, प्रेमभक्तिके साथ प्रतिमादर्शन तथा तीर्थविभूतियोंका दर्शन करना भी असम्भवसा होगया है, अधिक क्या कहा जाय किसी किसी तीर्थमेंसे तो स्त्री पुत्रादिको लेकर मर्यादासे लौट आना भी कठिन होगया है। अनेक विधर्मी म्लेच्छ भी तीर्थोंमें निवास कर नाना प्रकारके अत्याचार करने लगे हैं और कहीं कहीं पर तीर्थको ग्रास ही किये जारहे हैं। अब तीर्थमें अधिकांश स्थलपर शास्त्रविधिसे श्रद्धा भक्तिके साथ पूजन भी नहीं होते, अधिकांश पण्डे-पूजारि पूजाके अरि ही बन गये हैं केवल चढ़ावेके लिये ही चित्कार करते और यात्रियोंका प्राण खाते रहते हैं। कहीं कहीं पर अत्याचारी राजाओंने यात्रियों पर कर या स्नान दर्शन आदि पर टैक्स लगा दिया है, जिन कारणोंसे तीर्थोंकी महिमा नष्ट होकर केवल दुकानदारी ही चल पड़ी है। इसलिये यदि तीर्थोंकी महिमा पुनः प्रतिष्ठित करनी हो तो उनका समयानुकूल सुधार अवश्य होना चाहिये। तीर्थगुरु या तीर्थपुरोहित जिससे सच्चे गुरु पुरोहित बनकर तब दक्षिणा-पूजा ले सकें इसकी व्यवस्था होनी चाहिये। तीर्थोंमें जो लाखों रुपयेकी सम्पत्ति बरबाद होती है, उसे अच्छे काममें लगाकर पुरोहित विद्यालय, आचार्यकुल आदि खोलना और उन विद्यालयोंसे उत्तीर्ण विद्वान्, सदाचारी, आस्तिक, श्रद्धाभक्तिपूजापरायण गुरुपुरोहित ही जिससे सम्मानित होसके और अनधिकारियोंका सम्मान न हो इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। जिन राज्योंके अन्तर्गत तीर्थ हों उनमें तो नृपतिगण राजाज्ञा

द्वारा ही यह काम करा सकते हैं, अन्यत्र विशेष कमेटी द्वारा तीर्थाचार्यगण स्वयं ही इस कार्यको सुगमताके साथ करा सकते हैं या अन्य उत्तम अभिज्ञ पुरुषोंकी सहायता ले सकते हैं। तपस्वी सदाचारी ब्राह्मण तथा महात्माओंको तीर्थोंमें बसाना चाहिये, उनके ग्रासाच्छादन, भिक्षा आदिकी जिसमें असुविधा न रहे इसका उपाय सार्वजनिकरूपसे करा देनी चाहिये। निरंकुश अनाचारी नर नारियोंका अड्डा तीर्थ समूह न बन सकें और गन्दी दुकानं या वेश्यादि तीर्थों में न रह सके इसका विशेष कर प्रयत्न करना चाहिये। देवमन्दिर या स्नानके स्थानपर चढ़ावाका बलप्रयोग नहीं होना चाहिये, यात्रिगण श्रद्धापूर्वक जो कुछ देवें उसीमें तीर्थपुरोहितोंको सन्तोष रखना चाहिये। इत्यादि इत्यादि आवश्यक व्यवस्था होजानेपर पुनः तीर्थों की महिमा जाग उठेगी और पुराणादि शास्त्रोंमें तीर्थसेवनके जो उत्तमोत्तम फल बताये गये हैं, उन्हें सर्वथा प्राप्त करके आस्तिक, सदाचारपरायण, जितेन्द्रिय तीर्थसेवी कृतकृतार्थ हो सकेंगे इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है॥

अष्टम काण्डकी तृतीय शाखा समाप्त हुई।



धर्मकल्पद्रुम ।

[श्रीस्वामी दयानन्द विरचित]

—:o:*:o:—

यह हिन्दूधर्मका अद्वितीय और परमावश्यक ग्रंथ है। हिन्दुजातिकी पुनरुन्नतिके लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयोंकी जरूरत है, उनमेंसे सबसे भारी जरूरत एक ऐसे धर्मग्रंथकी थी कि जिसके अध्ययन अध्यापनके द्वारा सनातनधर्मका रहस्य और उसका विस्तृत स्वरूप तथा उसके अङ्ग उपाङ्गोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और साथ ही साथ वेद और सब शास्त्रोंका आशय तथा वेदों और सब शास्त्रोंमें कहे हुए विज्ञानोंका यथाक्रम स्वरूप जिज्ञासुको भलीभांति विदित हो सके। इसी गुरुतर अभावको दूर करनेके लिये भारतके प्रसिद्ध धर्मवक्ता और श्रीभारतधर्ममहामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी महाराजने इस ग्रंथका प्रणयन किया है। इसमें वर्तमान समयके आलोच्य सभी विषय विस्तृतरूपसे दिये गये हैं। इस ग्रंथसे आजकलके अशास्त्रीय और विज्ञानरहित धर्मग्रंथों और धर्मप्रचारके द्वारा जो हानि हो रही है, वह सब दूर होकर यथार्थरूपसे सनातन वैदिक धर्मका प्रचार होगा। इस ग्रंथरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपातका लेशमात्र भी नहीं है और निष्पक्षरूपसे सब विषय प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे सकल प्रकारके अधिकारी कल्याण प्राप्त कर सकें। इसमें और भी एक विशेषता यह है कि, हिन्दुशास्त्रके सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके सिवाय, आजकलकी पदार्थविद्या [Science] के द्वारा भी प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे आजकलके नवशिक्षित पुरुष भी इससे लाभ उठा सकें। इसके सात खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम खण्डका मूल्य २), द्वितीयका १॥), तृतीयका २), चतुर्थका २), पंचमका २), षष्ठका १॥) और सप्तमका २) है। इसके प्रथम दो खण्ड बढ़िया कागजपर भी छापे गये हैं। और दोनों ही एक बहुत सुन्दर जिल्दमें बांधे गये हैं। मूल्य ५) है। आठवां खण्ड यन्त्रस्थ है।

धर्मपुस्तकें ।

—*:०:*—

धर्मकल्पद्रुम प्रथम खण्ड	२)
" द्वितीय "	१॥)
" तृतीय "	२)
" चतुर्थ "	२)
" पंचम "	२)
" षष्ठ "	१॥)
" सप्तम "	२)
" अष्टम "	यन्त्रस्थ
प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत	२)
साधन-चन्द्रिका	१॥।)
शास्त्रचन्द्रिका	१॥)
धर्मचन्द्रिका	१)
नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत	१)
आचारचन्द्रिका	॥)
नीतिचन्द्रिका	॥)
चरित्रचन्द्रिका प्रथम भाग	१)
" द्वितीय भाग	१।)
धर्मप्रश्नोत्तरी	।)
सती-चरित्र-चन्द्रिका	२)
नित्यकर्मचन्द्रिका	।)
धर्मसोपान	।)
सदाचार सोपान	-)
कन्या शिक्षा सोपान	-)
ब्रह्मचर्य सोपान	।)
राजशिक्षा सोपान	≡)
साधन सोपान	।)
शास्त्रसोपान	।)
धर्मप्रचारसोपान	≡)
उपदेश पारिजात	॥)
कल्किपुराण	१॥)

योगदर्शन	२)
श्रीभारतधर्ममहामण्डलरहस्य	१)
निगमागमचन्द्रिका	१)
मन्त्रयोग संहिता	१)
हठयोग संहिता	॥।)
तत्त्वबोध	=)
स्तोत्र कुसुमाञ्जलि	।)
त्रिवेदीय सन्ध्या	।=)
दैवीमीमांसादर्शन प्रथम भाग	१॥)
श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खण्ड	१)
विष्णुगीता	१)
सूर्यगीता	॥)
शक्तिगीता	१)
धीशगीता	॥।)
शंभुगीता	१)
संन्यासगीता	१)
गुरुगीता	।)
वन्देमातरम्	)॥।
स्वराज्य प्रश्नोत्तरी	-)॥
श्रीरामगीता	२॥)
रामगीता छोटी	≡)
भारतकी जागती हुई आत्मा	-)
गीतारहस्य तिलकका	-)॥
विद्यार्थी और राजनीतिक आन्दोलन	-)
व्रतोत्सवचन्द्रिका	३)
आदर्शजीवन संग्रह	१॥)
धर्मकर्मदीपिका	॥)
आर्य-गौरव	॥)
सनातनधर्म दीपिका	॥।)

पुस्तक मिलनेका पता—मैनेजर निगमागम बुकडिपो,
भारतधर्म सिण्डिकेट भवन, स्टेशन रोड, बनारस सिटी।